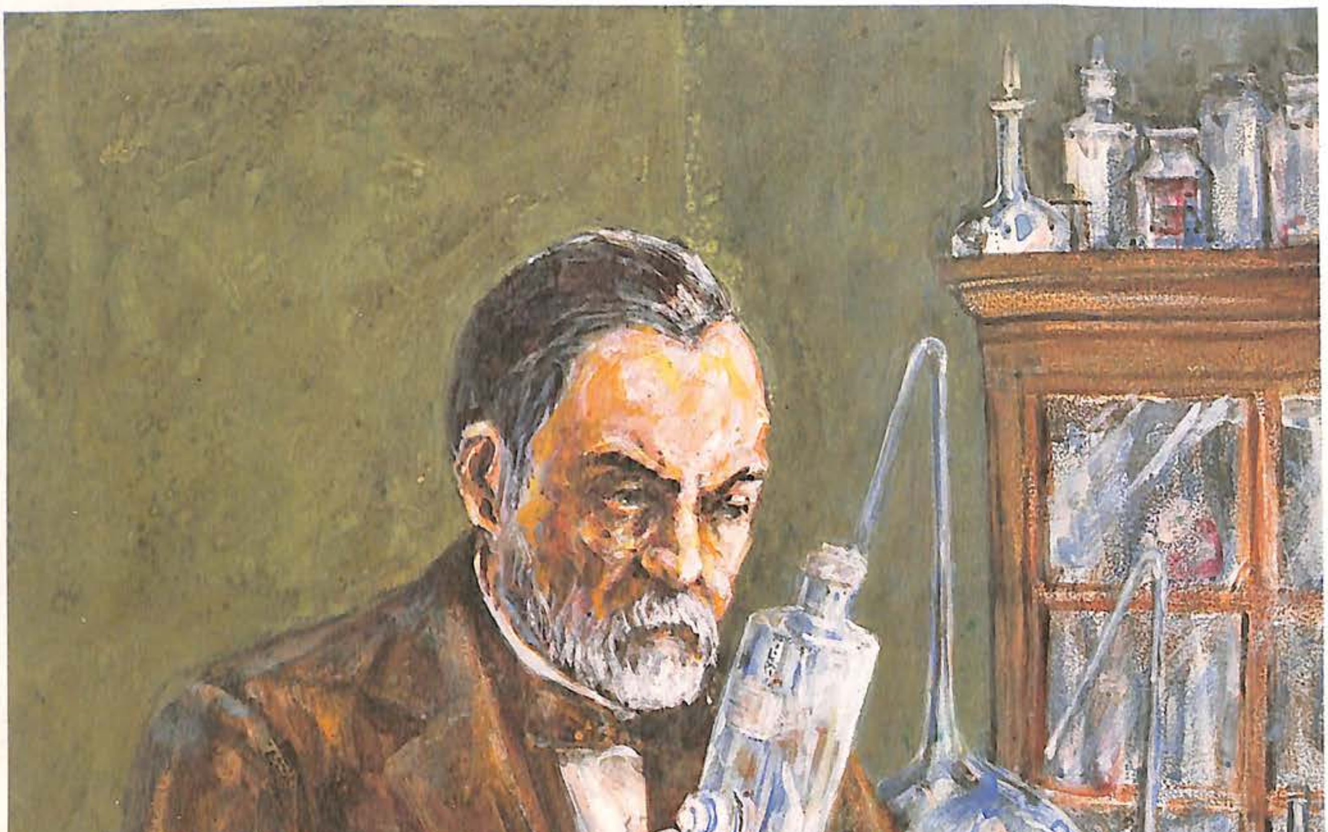
बाल विज्ञान पत्रिका

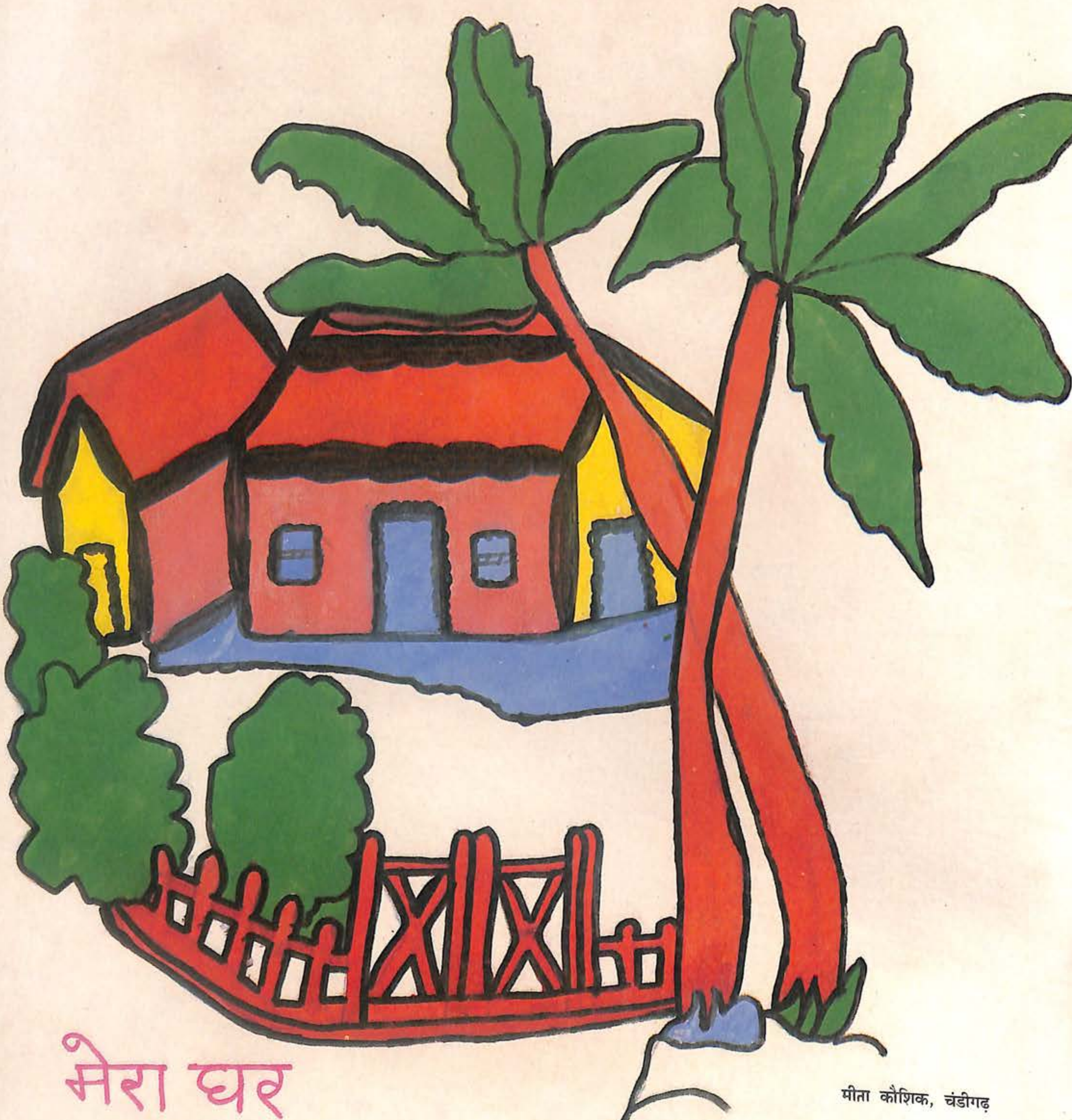
चकमक

नवंबर, 1989

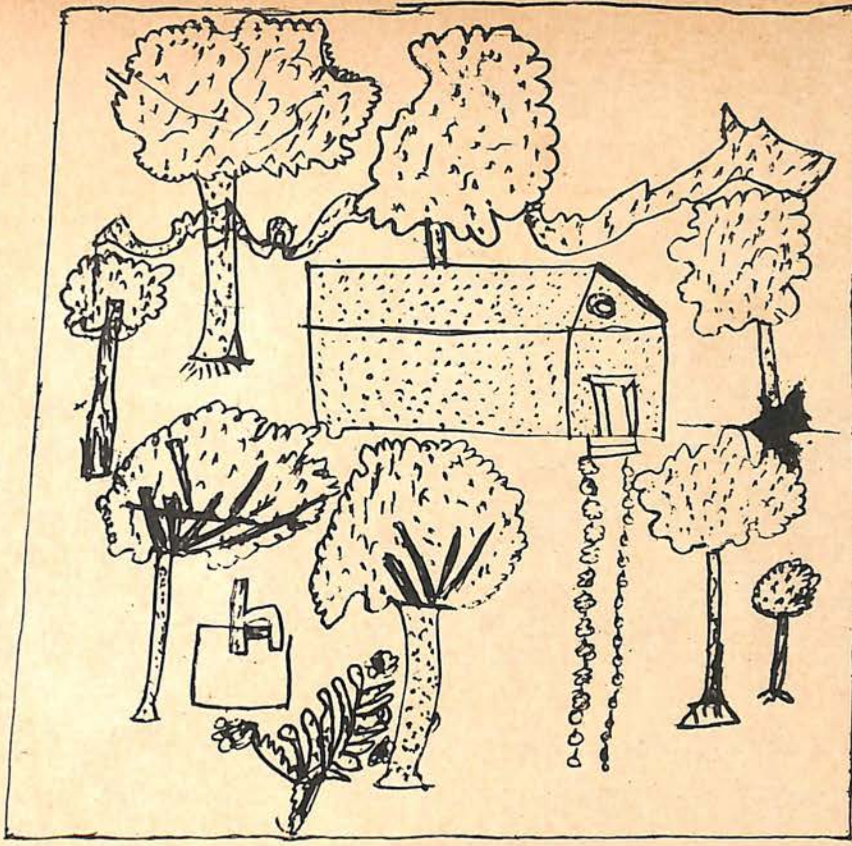
रु. 4.00



मेरा घर



मीता कौशिक, चंडीगढ़



महेश कुमार, सातवीं, छपरी, देवास

चकमक बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष 5 अंक 5 नवंबर, 1989

संपादक
विनोद रायना

सह-संपादक
राजेश उत्साही

कला
जया विवेक

उत्पादन/वितरण
हिमांशु बिस्वास, कमलसिंह

विज्ञापन
इला मिश्र

चकमक का चंदा
एक प्रति : चार रुपए
छमाही : बीस रुपए
वार्षिक : चालीस रुपए
डाक खर्च मुफ्त
चंदा, मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से एकलव्य के नाम पर भेजें।
कृपया चेक न भेजें।

पत्र/चंदा/रचना भेजने का पता :
एकलव्य,
ई-1/208, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462 016 (म.प्र.)

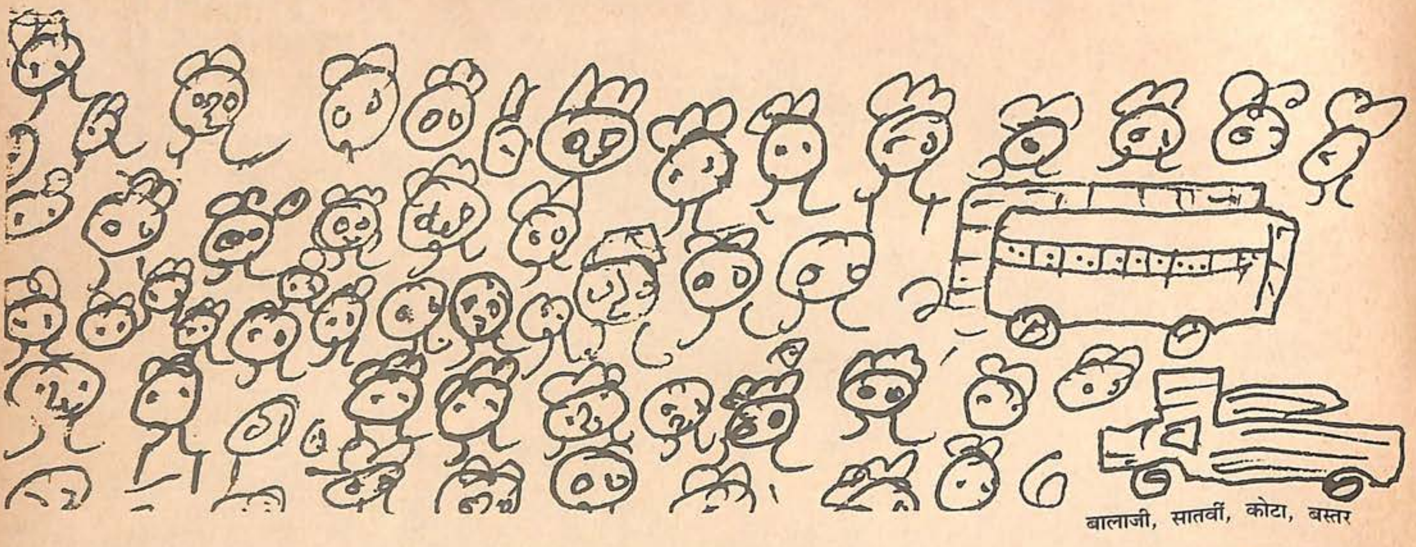
कागज़ : 'यूनिसेफ' के सौजन्य से।
सहयोग : राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली)

इस अंक में...

आवरण : लुई पास्चर अपनी प्रयोगशाला में।
चित्रकार : चंदन सिंह भट्टी

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

मेरे गांव में संकल्प मेला



बालाजी, सातवीं, कोटा, बस्तर

आज हमारे हरसूद नगर में एक विशाल संकल्प मेला आयोजित हुआ। जनता में एकता की भावना एवं उनका हौसला बुलंद करने के लिए यहां बहुत से लोग आने वाले थे। विनाशकारी बांध के विरोध में लोगों ने चार-पांच दिन पहले से ही रैलियां निकालना प्रारंभ कर दिया था। 27 सितंबर को यहां उनके आने के सारे प्रबंध कर दिए थे। शाम को एक स्तंभ भी बनाया गया। वहां से एक विशाल मशाल रैली प्रारंभ हुई। इस रैली में बीस हज़ार लोगों ने भाग लिया। इसमें महाराष्ट्र, बिहार, उत्तरप्रदेश आदि प्रदेशों के सभी आयु के लोग थे।

मैं भी इस रैली में शामिल था।

"कोई नहीं हटेगा, बांध नहीं बनेगा।"

"हर ज़ोर-ज़ुल्म की टक्कर में संघर्ष, हमारा नारा है।"

"हमें विनाश नहीं विकास चाहिए।"

"जो हमसे टकराएगा, सीधे ऊपर जाएगा।" इत्यादि नारे लगा रहे थे। उन लोगों में इतना जोश था कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता।

27 सितंबर को रात्रि दो बजे नब्बे ट्रक आदिवासियों से भरकर हरसूद आए। हरसूद के लोगों ने उनका स्वागत किया। सभी नेता रात्रि को आ गए थे। देश-विदेश के पत्रकार भी आ गए थे।

28 सितंबर को पहली किरण निकलते ही एक विशाल रैली निकाली गई। इस रैली में करीब पैंतीस हज़ार लोग थे।

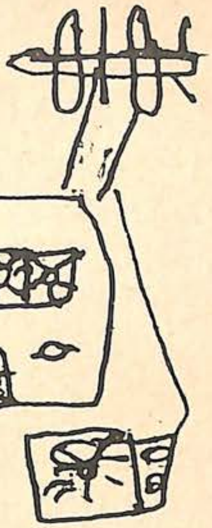
शाम साढ़े पांच बजे हम लोगों ने संकल्प लिया कि हम यह विनाशकारी बांध नहीं बनने देंगे। अंत में एक रैली और निकाली गई। इस प्रकार यह संकल्प मेला समाप्त हुआ।

□ गजेन्द्र मालवीय, आठवीं, हरसूद



शिवानी ताम्बे, पांच वर्ष, इंदौर



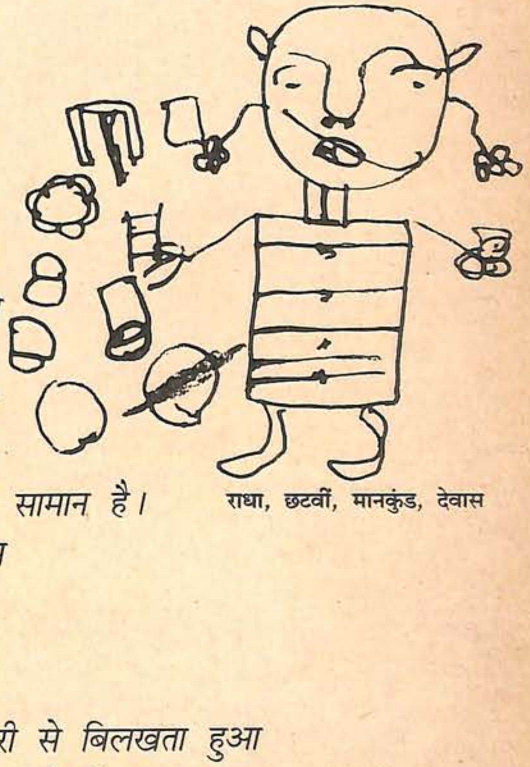


मधुबाला, चौथी, मानकुंड, देवास

मेरा भारत महान!

पेट में रोटी नहीं
तन पर कपड़ा नहीं
नहीं सिर पर मकान है
फिर भी गर्व से कहते हैं हम
कि भारत हमारा महान है!

जिन हाथों में होने थे खिलौने
जिन हाथों में होनी पुस्तकें
उन हाथों में आज होटल की
जूठी प्लेटें हैं
उन हाथों में बूट पॉलिश का सामान है।
फिर भी गर्व से कहते हैं हम
कि भारत हमारा महान है!



राधा, छटवीं, मानकुंड, देवास

भुखमरी से बिलखता हुआ
कुपोषण से सिसकता हुआ
अपनी ग़रीबी पर रोता हुआ
वह इंसान अपनी ज़िंदगी से परेशान है!
फिर भी गर्व से कहते हैं हम
कि भारत हमारा महान है।

☐ निलेश कुमार राठौर, दसवीं, खरगौन



श्रीकांता, छटवीं, मानकुंड, देवास

एक अनोखा दिन

मैं रोज़ विद्यालय जाता हूं पर प्रायः घंटी बजने पर या उसके बाद विद्यालय पहुंच पाता हूं। आज मैंने हिंदी की पुस्तक पढ़ी, जिसमें टी.दास का एक वाक्य मेरे मन को भा गया (हम तुलसीदास को टी.दास कहते हैं)। मैं विद्यालय पहुंचा तो मुझे वहां अंजु दिखी। मैं मन ही मन मुस्कराया कि आज मैं जल्दी आ गया हूं।

थोड़ी देर बाद घंटी बजी। सबने विद्यालय की प्रार्थना की और अपनी-अपनी कक्षा में चले गए। अब हमारी कक्षा अध्यापिका आईं। उन्होंने हाजिरी भरी। जब मेरा नाम पुकारा गया, मैंने कहा, "यस मैडम!" तो मैडम मेरी तरफ देखने लगीं और कहा, "आज सूरज कहां से उगा है? ज़िंदगी में पहली बार समय पर आए हो तुम समय का ख़्याल रखो समय तुम्हारा ख़्याल रखेगा।"

धीरे-धीरे यह पीरियड बीत गया। अब अंग्रेज़ी का पीरियड चल रहा था। आज मैडम हिंदी से अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ी से हिंदी अनुवाद करा रही थीं। सबसे कुछ न कुछ पूछ रही थीं। जो सही उत्तर दे रहा था उसे बैठा दिया जा रहा था। मुझे उस समय बहुत प्यास लगी थी। मैं मैडम से कहने वाला था, "क्या मैं पानी पीने जाऊं।" पर हमारा विद्यालय अंग्रेज़ी माध्यम से चलता है तो मैं कहने वाला था, "मे आई गो टू ड्रिंक वाटर।"

अचानक मैडम ने मुझसे प्रश्न किया, "क्या मैं घर जाऊं।, इसकी अंग्रेज़ी क्या होगी।" मैंने तुरंत उत्तर दिया, "मे आई गो टू होम।" उत्तर पाकर मैडम मुझे देखने लगीं और सोचने लगीं इसने इतनी जल्दी जवाब कैसे दे दिया। मुझे बैठने का इशारा किया। मैं खड़ा रहा और पानी पीने की इजाज़त मांगकर कक्षा से बाहर आ गया।

आज मैं बहुत खुश था कि मैं विद्यालय समय पर आ गया और वैसे भी पढ़ाई अच्छी चल रही थी। पर यह खुशी कब तक टिकती। मैं हर पीरियड में हंसता रहा, खुश होता रहा। अभी छुट्टी होने को एक पीरियड बचा था।

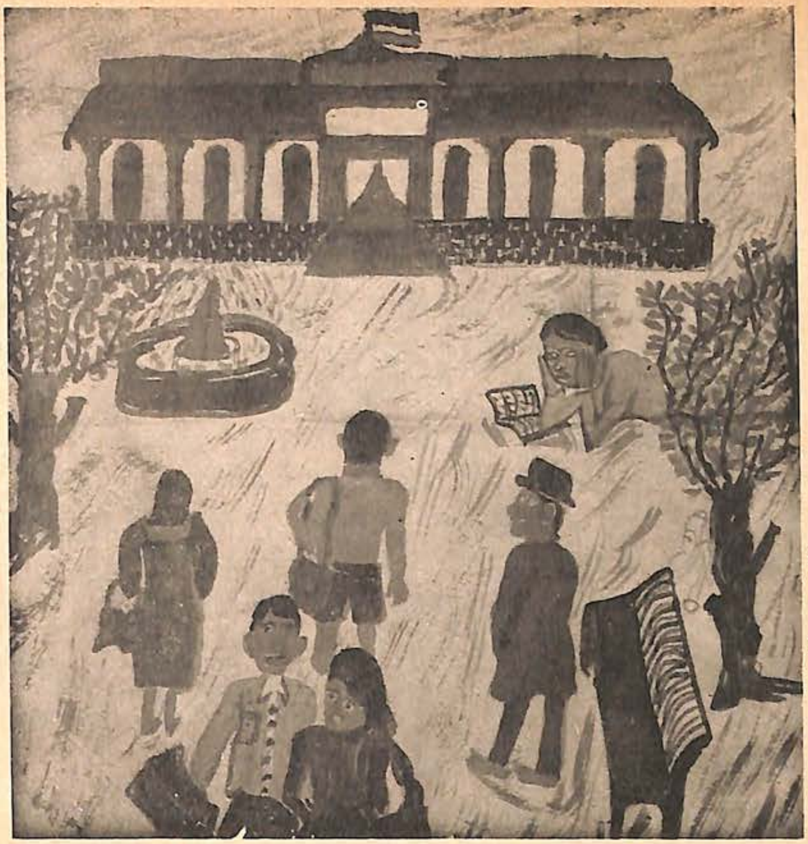
आख़िरी पीरियड हमारा अर्थशास्त्र का होता है जो हमें मलिक मैडम पढ़ाती हैं। वो बहुत अच्छा पढ़ाती हैं पर यदि उनके पीरियड में कोई उनकी बात न सुने वो भी पढ़ाते वक्त तो विद्यार्थी की बात ऐसे काटती हैं कि वह हमेशा याद रखे। ऐसा ही कुछ मेरे साथ हुआ। अभी कुछ दिन बाद जन्माष्ठमी आने वाली थी। मैं भी कृष्ण के बारे में व्यंग्य कस रहा था। तभी अचानक मैडम की निगाह मेरी तरफ गई और पूछा, "क्या कर रहे थे?" मैं थोड़ी देर चुप रहा। पर जब मेरा बोलना आवश्यक हुआ तो सच-सच बोल दिया। इसका परिणाम यह निकला मुझे कहा गया, "हीरो"। मैं हीरो बनना नहीं चाहता। दूसरी बात जिसने चार साल से पिक्चर सिनेमाघर में न देखी हो, उसे हीरो की उपाधि दी गई। पर मैं चुपचाप मैडम की बातें सुनता रहा क्योंकि गलती मेरी थी। शायद आवश्यकता से अधिक प्रसन्न हुआ, उसका यह परिणाम हुआ।

मैं धीरे-धीरे अकेला साइकिल पर सवार हुआ, और घर की ओर चल दिया। क्योंकि मेरा मन उदास था। मैं पैदल वालों से भी पीछे हो गया। मैंने सोच लिया मैं कभी अपनी अच्छाइयों को प्रकट करके स्वयं इतना खुश न रहूंगा। क्योंकि किसी भी चीज़ की अति अच्छी नहीं होती।

रास्ते में घर जा रहा था। तो मुझे अपने मोहल्ले वाले मिले। मैंने कहा, "मुझे बैग दे दो मैं ले चलता हूं।"

तभी अंजू बोली, "तुम्हारे कितने प्रतिशत आए थे नवमीं में।"

अब तक मैं सामान्य हो गया था। मैडम



जगदीश कुमार जैन, परासिया

की डांट ने मुझे अच्छा सबक़ सिखाया। अतः मैंने उत्तर दिया, "73%।" और प्रश्न किया, "तुम्हारे कितने प्रतिशत आए थे?"

अंजू ने कहा, "74 प्रतिशत।" और पूछा, "आठवीं में कितने प्रतिशत आए थे?"

मैंने जवाब दिया, "73 प्रतिशत।"

यह सुनकर उसने मुझसे कहा, "क्या 73% पर ही रहने का विचार है। इस साल 83% आने चाहिए।"

अब तक पढ़ाई की बात सुनकर मैं बात पढ़ाई से हटाना चाहता था क्योंकि अभी अभी ही तो पढ़कर घर जा रहा था। अतः मैंने बात को काटने के लिए बोला, "इस साल तो तुम्हारे 84% आने चाहिए।"

अंजू ने तुरंत उत्तर दिया, "अभी से 84% की बात मत करो यदि नहीं आए तो?"

तभी अचानक हल्की-हल्की पानी की बूंदें गिरने लगीं। जैसे बरसात आएगी। उसी समय अंजुम ने कहा, ये अपने मोहल्ले की बड़ी तारीफ करती है। कि तुम बड़े अच्छे हो, मोहल्ला बड़ा अच्छा है। पर मुझे तो अभी भी मैडम की डांट याद थी। कितनी भी तारीफ हो मैं सबका भला करता चला। चूंकि अंजू को मोहल्ला अच्छा लगा।मैंने कहा, "आ जाना मोहल्ला देख लेना।"

मोहल्ले में पहुंचा तो मेरे अलावा जो साइकिल लाते थे गिल्ली डंडा खेलते मिले। खेलते-खेलते किसी ने कहा, "टुल्ला जमा दे।" मुझे न जाने क्यों हंसी आ गई। मैं अपनी हंसी रोकता इससे पहले ही दीपक ने कहा, "आज सूरज कहां से उगा है? बड़ी देर कर दी आने में। रोज़ तो बहुत जल्दी आ जाते थे।"

मैंने मन ही मन कहा, 'अब सूरज यहीं से उगेगा। मतलब मैं जल्दी विद्यालय जाऊंगा।' अब तक बहुत शाम हो गई थी। सूरज डूबने को आया था। मैंने प्रश्न का उत्तर देते समय सूरज की ओर हाथ बताकर कहा, "यहीं से उगा है।"

☐ कमलेश खैरिया, दसवीं, भोपाल

सृजन

कहानियां कविताएं निबंध चित्र

तुम्हें याद होगी चकमक की **पहली प्रतियोगिता** और उससे बना **'तुम्हारा अपना अंक'**। हम तुम्हें वैसी ही एक और प्रतियोगिता में भाग लेने का न्यौता दे रहे हैं। यह तो तुम जानते ही हो कि अपनी यानी चकमक की प्रतियोगिता में न तो हार-जीत का कोई चक्कर होता है और न फर्स्ट-सेकंड का! इसमें तो सब जीतते हैं। एक बात हमारे मन में आई है कि हम इसे प्रतियोगिता कहें ही क्यों? कुछ और कहें! क्या कहें?... चलो **सृजन** कहते हैं! सृजन तो तुम समझते हो न! सृजन यानी कुछ बनाना, गढ़ना या फिर रचना।

तो आओ सृजन में भाग लो, हिस्सा लो, शामिल हो जाओ!

अगर तुम्हारे पास 'तुम्हारा अपना अंक' (जनवरी, 87) हो तो उसे एक बार ध्यान से अवश्य देख लेना। उसमें कुछ ऐसी बातों पर चर्चा की गई है जिनसे तुम्हें मदद मिलेगी सृजन में।

सृजन में भाग लेने के लिए **कोई नियम-क़ानून या शर्तें नहीं है**। हां कुछ छोटी-मोटी बातों का ध्यान अवश्य रखना होगा।

सृजन में भाग लेने के हक़दार वे पाठक ही हैं जिनकी **आयु 31 दिसंबर, 89 को 17 वर्ष** से अधिक नहीं है।

वैसे सृजन के लिए पूरी स्वतंत्रता है। पर आसानी के लिए रचनाओं के चार वर्ग बनाएं हैं—

कहानी कविता निबंध और चित्र!

रचनाओं का **विषय कोई भी** हो सकता है। पर हमारी अपेक्षा है कि रचनाएं **पर्यावरण, विज्ञान तथा रोज़गार की घटनाओं, समस्याओं, अनुभवों** और तुम्हारी **कल्पनाओं** पर आधारित हों। रचनाएं छोटी या बड़ी—कैसी भी हो सकती हैं।

हमारे पास आमतौर पर जो रचनाएं आती हैं उनमें कुछ किसी दूसरी **पत्रिका या किताब से नक़ल की** गई होती हैं। हमें यक़ीन है कि सृजन में तुम जो रचनाएं भेजोगे वह **मौलिक** होगी। साथ ही एक बात और रचना **अपनी लिखावट** में ही भेजना।

रचना भेजने के लिए कोई भी काग़ज़ या डाक सामग्री (पोस्टकार्ड, अंतर्देशीय आदि) का उपयोग कर सकते हो!

सृजन

चित्र भी स्याही या रंग जिससे तुम बनाना चाहो—बना सकते हो। काग़ज़ जो तुम्हारे पास हो चलेगा।

रचनाओं की संख्या पर कोई रोक नहीं है। एक व्यक्ति सभी विधाओं की रचनाएं या एक ही विधा की कई रचनाएं भेज सकता है।

चुनी हुई रचनाएं चकमक में प्रकाशित होंगी। **और इनाम? इनाम-विनाम कुछ नहीं! हां, उसकी जगह कुछ सुंदर पुस्तकें उपहार में** भेजी जाएंगी। एक काम तो हम करेंगे ही, सृजन में भाग लेने वाले प्रत्येक भागीदार को चकमक का वह अंक जो सृजन की सामग्री से बनेगा, भेजा जाएगा। अब तो खुश! तो फिर लग जाओ सृजन में।

सृजन में भाग लेने के लिए कोई फ़ीस या प्रवेश शुल्क नहीं है। बस सृजन करो और 31 दिसंबर, 1989 तक हमें भेज दो।

प्रत्येक रचना के साथ अपना **नाम, जन्मतिथि, पूरा पता (डाक घर सहित)** ज़रूर लिखना!

अपनी रचनाएं इस पते पर भेजना—
एकलव्य,
ई-1/208, अरेरा कालोनी, भोपाल, म.प्र.-462 016

अपने लिफ़ाफ़े, पोस्टकार्ड या अंतर्देशीय पर **सृजन** लिख दोगे तो हमें आसानी होगी।

बड़ों से, चाहे वे शिक्षक हों, माता-पिता हों या फिर अभिभावक—एक बात कहना चाहते हैं कि वे अपने नन्हे-मुन्नों को प्रोत्साहित ज़रूर करें पर उनकी सृजनात्मकता के आड़े न आएं। उनके प्रयास में दख़लंदाजी न करें। वे जो, जैसा लिख रहे हैं / बना रहे हैं—उन्हें लिखने दें/बनाने दें। चाहे उनकी लिखावट टेड़ी-मेढ़ी अस्पष्ट ही क्यों न हो, वैसी ही रहने दें। ऐसा नहीं है हम साफ़-सुथरी लिखावट नहीं चाहते, पर हम यह भी जानते हैं कि हर बच्चे के लिए वे सारे साधन, सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं जिनकी मदद से वह अपनी अभिव्यक्ति को सुंदर ढंग से सामने रख सके। कुछ ऐसे ही कारणों से हमने ऐसे आयोजनों में बनाए जाने वाले बंधनों, नियमों से सृजन को मुक्त रखा है। आप भी उन्हें अपने निर्देशों से मुक्त रखें। उसने खुद से कुछ रचा है, बनाया है सृजन किया है यह अहसास बनाए रखें। मत भूलें कि बच्चे के इस सृजन में भी आपकी एक अप्रत्यक्ष भूमिका है।

बेल : अंजना अग्रवाल, सेमरी हरचंद, होशंगाबाद

कथा, जीवाणु खोज की

पुराने समय से ही यह बात चर्चा का विषय रही है कि सबसे छोटी जीवित चीज़ आख़िर क्या है? प्राचीन समय में लोग छोटे-छोटे बीज देखते थे जिनसे पौधे उग आते थे। यह सवाल उनके मन में रहा होगा कि क्या इन बीजों से भी छोटे जीव-जंतु होंगे?

इसी बीच लोगों ने देखा कि अगर वस्तुओं को गोलाईदार कांच से देखा जाए तो वस्तु बड़ी दिखती है। वास्तव में गोलाईदार कांच से वस्तुओं को देखने की शुरूआत सन् 1650 से हुई थी। कांच के इन टुकड़ों को लेंस नाम दिया गया। लेंस से चीज़ें बड़ी दिखती हैं, और अगर एक से अधिक लेंस किसी नली में एक ख़ास क्रम में रखे जाएं तो इस तरह बनने वाले यंत्र को सूक्ष्मदर्शी या माइक्रोस्कोप कहा जाता है। सूक्ष्मदर्शी की मदद से बाद में लोगों ने छोटी चीज़ों का अध्ययन शुरू किया, ख़ासकर पिस्सू का। इसीलिए शुरू में माइक्रोस्कोप को पिस्सू कांच भी कहा जाता था। लेकिन यह पिस्सू कांच बहुत अच्छा नहीं था। लेंस के भीतर हवा के बुलबुले रहते और सतह भी बहुत साफ़ व चमकदार नहीं थी। इस वजह से देखी जाने वाली वस्तु बहुत साफ़ और स्पष्ट नहीं दिखती थी।

इधर हॉलैंड देश में ल्यूवेनहॉक नामक एक व्यक्ति लेंसों को बेहतर बनाने में जुटा हुआ था। वह न तो ज़्यादा पढ़ा-लिखा था, न ही कोई वैज्ञानिक। उसकी तो लोहा-लंगड़ यानी हार्डवेयर की दुकान थी। उसने ऐसे लेंस बनाए, जिनकी सतह चमकदार थी और कांच में हवा के बुलबुले भी नहीं थे। इन लेंसों में से चीज़ें अपने आकार से दो सौ गुना बड़ी दिखतीं थीं। ल्यूवेनहॉक ने कुल मिलाकर 419 लेंस बनाए। हालांकि एक लेंस को बनाने में बहुत अधिक समय लगता था। पर ल्यूवेनहॉक जीवट आदमी था, वह नब्बे बरस जिया और अंत तक काम ही करता रहा।

ल्यूवेनहॉक ने इन सूक्ष्मदर्शियों की मदद से चमड़ी, खून, बाल आदि को देखा। सन् 1677 में उसने डबरे के पानी की एक बूंद को अपने माइक्रोस्कोप के नीचे रखा। पानी की बूंद में उसे कई छोटी-छोटी रचनाएं दिखाई दीं। इनमें से कुछ तो जीवित थीं और एक सेंटीमीटर के बीसवें भाग से भी छोटी। जीवित रचनाएं पानी की बूंद में हरकत करती थीं और कुछ खाती भी जाती थीं। ल्यूवेनहॉक से पहले शायद कोई कल्पना भी नहीं कर पाया था कि इतने छोटे जीव भी हो सकते हैं। इन जीवों को अब अमीबा, पैरामीशियम आदि नामों से जाना जाता है।

ज्यों-ज्यों सूक्ष्मदर्शी बेहतर होता गया त्यों-त्यों अधिक बारीक चीज़ों का अध्ययन करना संभव होता गया। सन् 1683 में कुछ बिंदुनुमा और तिनके जैसी रचनाएं देखी गईं। ल्यूवेनहॉक को शक था कि ये रचनाएं भी जीवित हैं। लेकिन अपने हर तरह के प्रयास के बावजूद वह इन रचनाओं का गहराई से अध्ययन करने में सफल न हो सका। अंततः इन रचनाओं को बैक्टीरिया या जीवाणु नाम दिया गया। यूनानी भाषा में बैक्टीरिया का अर्थ होता है—छोटे डंडे। हिंदी में हम इन्हें जीवाणु कहते हैं। इन्हीं जीवाणुओं को हम एक दूसरे शब्द-रोगाणु या जर्म से पुकारते हैं। इस तरह ल्यूवेनहॉक पहला व्यक्ति था जिसने रोगाणुओं को देखा।

सन् 1830 तक आते-आते न केवल अच्छी क्वालिटी के लेंस बनने लगे थे, बल्कि सूक्ष्मदर्शी बनाने



निमोनिया बैक्टीरिया

जुकाम वायरस



के तरीके भी विकसित हुए थे। इन विकसित सूक्ष्मदर्शियों से ही बैक्टीरिया या जीवाणुओं का व्यापक अध्ययन हो पाया।

एक जर्मन जीववैज्ञानिक, फेरदिनानद जूलियस कोहन ने इन जीवाणुओं का सूक्ष्मदर्शी से गहरा अध्ययन किया। उसने अन्य जीवाणुओं के अलावा एक कोशिय वनस्पति शैवाल या एल्गी का भी अध्ययन किया। एल्गी वास्तव में सबसे छोटी वनस्पति है। 1860 के दशक में उसने इन सभी जीवाणुओं के आकार, रहने के तरीकों, उनके विभाजन आदि का विस्तृत अध्ययन किया। अपने इस अध्ययन को उसने 1872 में तीन खंडों वाली एक किताब में प्रकाशित किया। इस किताब का प्रकाशन एक तरह से "बैक्टीरियोलॉजी" जैसे विषय की स्थापना थी। फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस किताब के प्रकाशन से 200 वर्ष पहले ल्यूवेनहॉक ने बैक्टीरिया देख लिए थे।

आज मानव जाति के लिए बैक्टीरिया का क्या महत्त्व है, यह किसी से छिपा नहीं है। लेकिन उस समय तो लोगों को इस प्रश्न ने परेशान कर रखा था कि आखिर जीवाणु आते कहां से हैं?

यह पता था कि मानव जैसे बड़े-बड़े प्राणी, जानवर, पेड़-पौधे कैसे पैदा होते हैं। बड़े प्राणी बच्चों को जन्म देते हैं, पक्षी अंडे देते हैं जिनमें से चूजे निकलते हैं और पेड़-पौधे बीजों को बोने से बनते हैं। लेकिन छोटे कीटों और कृमियों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। ऐसा लगता था कि वे अपने आप ही पैदा होते हैं। कई लोगों का मत था कि ये सड़ी-गली वस्तुओं से उत्पन्न होते हैं। ऐसा समझा जाता था कि मृत चीज़ें सड़कर अपने आप अन्य जीवों में परिवर्तित हो जाती हैं। इस धारणा को "स्वतः उत्पत्ति" के सिद्धांत से जाना जाता था। इस सिद्धांत का एक उदाहरण सड़े-गले गोश्त का दिया जाता था? ऐसा लगता था कि जैसे सड़ते हुए गोश्त पर अपने आप कीड़े उत्पन्न हो रहे हैं। सन् 1668 में एक इतालवी जीवशास्त्री फ्रांसिसको रेडी को एक प्रयोग सूझा। उसने देखा था कि सड़े हुए गोश्त पर हमेशा मक्खियां मंडराती रहती हैं। उसने सोचा शायद कीड़ों की उत्पत्ति से इनका कोई संबंध हो?

उसने मांस के कुछ टुकड़े छोटे-छोटे बर्तनों में रख दिए। कुछ बर्तनों को उसने एक बारीक कपड़े से ढक दिया, ताकि उनमें हवा तो जा सके लेकिन मक्खी नहीं। और बाकी बर्तन खुले छोड़ दिए। मांस के टुकड़े सड़ने लगे। लेकिन उन्हीं टुकड़ों पर कीड़े दिखाई दिए जिन पर मक्खियां बैठ सकती थीं। कपड़े से ढके बर्तनों का मांस तो सड़ा लेकिन उनमें कीड़े नहीं पड़े। रेडी ने इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकाला कि मक्खियां सड़ते हुए मांस पर अंडे देती हैं और उन अंडों से ही कीड़े बन जाते हैं और कुछ समय बाद यही कीड़े मक्खियों में बदल कर उड़ जाते हैं। सूक्ष्मदर्शी की मदद से मांस पर अंडे भी देखे गए।

रेडी के इस प्रयोग के कुछ साल बाद ही ल्यूवेनहॉक ने जीवाणुओं के होने का पता लगाया था। सवाल वही था कि जीवाणु कहां से आते हैं? यह तो मांस पर पैदा होने वाले कीड़ों से भी छोटे और सरल रचना के जीव थे। "स्वतःउत्पत्ति" सिद्धांत कहीं जीवाणुओं पर तो लागू नहीं होता?

अंततः 1748 में एक अंग्रेज़ जीवशास्त्री, जॉन नीढम ने एक प्रयोग किया। उसने मांस का रस (सूप) लिया जिसमें अनेक जीवाणु थे। उसने सूप को उबाला ताकि सारे जीवाणु मर जाएं। फिर उसने इस सूप को एक ऐसे बर्तन में रखा जो चारों तरफ से बंद था। इस तरह यह तय था कि अब इस सूप में बाहर से



तपेदिक बैक्टीरिया

डिप्थीरिया बैक्टीरिया





हैजा बैक्टीरिया

कोई जीव प्रवेश नहीं कर सकता। अगर सूप में कोई जीव मिलता है तो इसका मतलब है वह अपने आप उत्पन्न हुआ होगा। कुछ दिन बाद नीढम ने जब बर्तन खोला तो उसमें अनेकों जीव थे। नीढम इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि जीवाणुओं की उत्पत्ति अपने आप होती है।

लेकिन एक अन्य इतालवी जीवशास्त्री, लज़ारो स्पेलेनज़ानी को लगा कि शायद नीढम ने सूप को ठीक से और देर तक न उबाला हो, इससे संभव है कुछ जीवाणु बच गए हों। उसने नीढम के प्रयोग को दोहराया। सूप को आधे घंटे तक उबाला और फिर एक वैसे ही बर्तन में बंद करके रख दिया। जब कई दिनों बाद लज़ारो ने बर्तन को खोला तो उसमें जीवाणु नहीं थे।

इस प्रयोग से यह बात तो स्पष्ट होती ही है कि वैज्ञानिक तरीके में ठीक-ठीक प्रयोग करने का क्या महत्त्व है।

कई लोग अभी संतुष्ट नहीं थे। उनका कहना था कि प्रकृति में तो उबलने जैसी प्रक्रिया कहीं नहीं होती है। शायद स्वतः उत्पत्ति के लिए हवा के कुछ रसायन ज़रूरी हों जो उबलने से नष्ट हो जाते हों। हो सकता है नीढम के प्रयोग में उबालने से सारे रसायन नष्ट न हो पाएं हों और स्पेलेनज़ानी के प्रयोग में हो गए हों। और इसी कारण से निष्कर्षों में फर्क आ रहा हो। इन असंतुष्ट लोगों ने यह भी कहा कि आख़िरकार उबले हुए सूप को दुबारा हवा में रखने पर थोड़ी ही देर में उसमें जीवाणु पैदा हो जाते हैं। वे कहां से आए? शायद ठंडी हवा का वातावरण मिलने पर अपने आप सूप में उत्पन्न हो गए हों।

लगभग सौ साल तक जीवशास्त्रियों के बीच इस बात पर विवाद होता रहा। फिर 1858 में एक फ्रांसिसी रसायनशास्त्री, लुई पास्चर ने इस समस्या को सुलझाया। इसे विज्ञान के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में देखा जाता है।

पास्चर को शक था कि हवा में भी जीवाणु रहते हैं। उसमें अपने शक को जांचने के लिए एक प्रयोग किया। उसने थोड़ी-सी रूई ली और उसे पानी में डालकर अच्छी तरह उबाल लिया, ताकि उसमें छिपे सारे जीवाणु मर जाएं। फिर रूई निकालकर हवा में रखी और थोड़ी देर बाद वापस उसी पानी में डाल दी। पानी में फिर से जीवाणु दिखाई देने लगे। याद रहे कि यह सारा काम सूक्ष्मदर्शी के सहारे से हो रहा था। इस प्रयोग से ऐसा लगा कि हवा में भी जीवाणु होते हैं। पास्चर ने एक और प्रयोग किया। उसने एक ऐसा तरीका सोचा जिसमें किसी बर्तन में भरे सूप में ठंडी हवा लगातार जाती रहे लेकिन हवा के जीवाणु न पहुंचें। उसे इस बात का अहसास था कि हवा में जीवाणु धूल के कणों पर चिपके रहते हैं। उसने एक ख़ास तरह का फ्लास्क बनाया। इस फ्लास्क में एक लंबी नली बाहर की ओर निकली हुई थी। फ्लास्क तथा नली की रचना तुम चित्र में देख सकते हो। पास्चर ने इस फ्लास्क को सूप से आधा भर लिया और फिर सूप को उबाला। मुड़ी हुई नली से भाप को देर तक निकलने दिया। इस तरह सूप व नली में सभी जीवाणु मर गए। फिर उसने सूप को ठंडा होने दिया। फ्लास्क की मुड़ी हुई नली को भी खुला ही रखा, ताकि हवा अंदर जा सके। हवा तो सूप तक पहुंच सकती थी, लेकिन धूल के कण मुड़े हुए हिस्से से ऊपर उठ कर फ्लास्क के भीतर प्रवेश नहीं कर पाते थे, वे वहीं मुड़े हुए हिस्से में रह जाते।

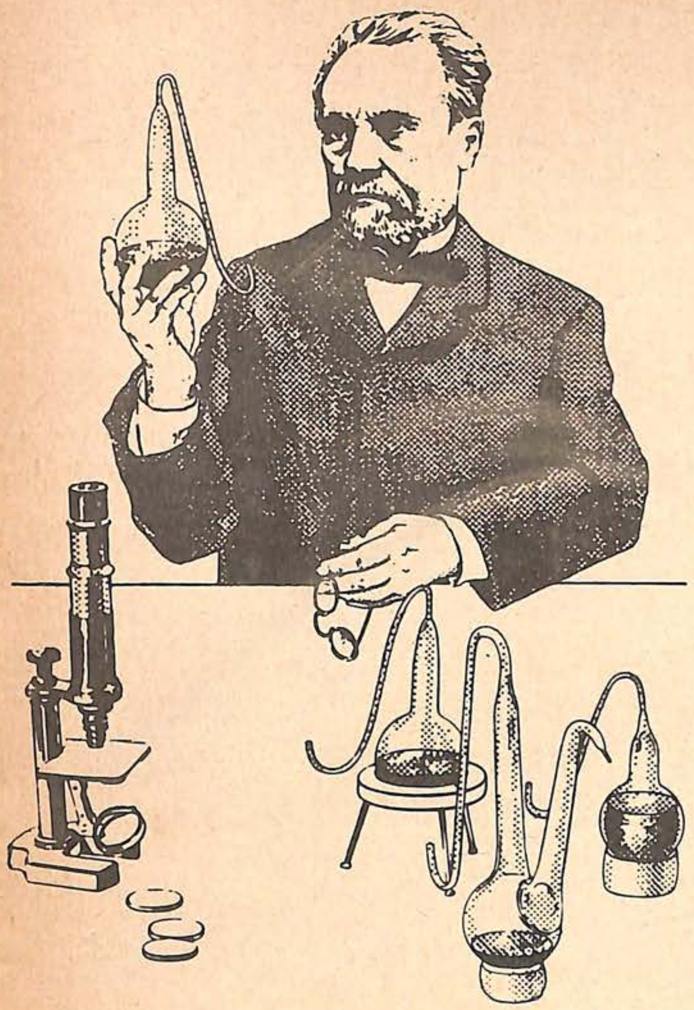
पास्चर ने महीनों तक फ्लास्क को ऐसे ही रखे रहने दिया, लेकिन सूप में कोई जीवाणु पैदा नहीं हुए।

खट्टे या बिगड़े दूध के बैक्टीरिया





तंबाखू के पत्तों पर बीमारी फैलाने वाले बैक्टीरिया



गिरने की। पास्चर के इसी अध्ययन से रोगों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिली।

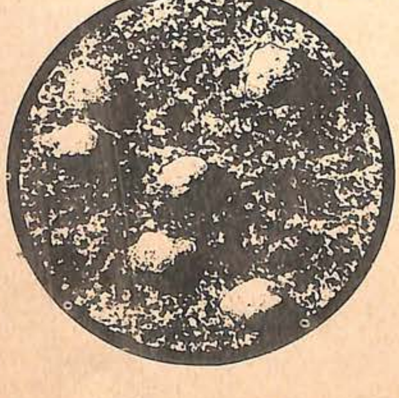
अब रोग तो ऐसी चीज़ है जिसके बारे में जानने के लिए सभी उत्सुक रहते हैं, क्योंकि कभी-न-कभी इसकी गिरफ़्त में आ ही जाते हैं। अगर एक व्यक्ति को बुखार आए तो हो सकता है दूसरे व्यक्ति भी बीमार हो जाएं, या शायद पूरा परिवार, मोहल्ला, गांव या शहर भी बीमार हो सकता है। सन् 1300 में यूरोप, अफ्रीका व एशिया में एक ऐसी महामारी फैली जिससे करोड़ों लोगों की मृत्यु हो गई। उस समय किसी को यह मालूम नहीं था कि रोग कैसे होते या फैलते हैं। कुछ लोग सोचते थे कि यह भूत-प्रेत का काम है, तो कुछ सोचते थे कि हवा में कुछ गड़बड़ है। कईयों का यह सोचना था कि बुरे कामों की सज़ा है यह। इस तरह किसी को भी इस बात का ज्ञान नहीं था कि बीमारियों को रोका भी जा सकता है। लोग महामारी के डर से हमेशा आतंकित रहते।

यह देखने में आया कि कुछ बीमारियां ऐसी हैं, जैसे-चेचक, कि यदि किसी व्यक्ति को एक दफ़ा हो जाए तो दुबारा नहीं होती थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे उस व्यक्ति ने उस बीमारी से लड़कर हमेशा के लिए मुक्ति पा ली हो।

सन् 1770 में एडवर्ड जेनर नामक एक अंग्रेज़ डाक्टर ने गायों को होने वाली बीमारी-काउपॉक्स में दिलचस्पी ली। यह बीमारी कुछ-कुछ चेचक जैसी दिखती थी। गायों से यह मनुष्यों को भी होती थी। लेकिन चेचक की तरह नहीं। इसमें तो एकाध छाला ही निकलता बस। जहां जेनर काम कर रहा था, वहां के लोग काउपॉक्स को अच्छा मानते थे। क्योंकि उन्होंने देखा था कि जिसे एक दफ़ा काउपॉक्स हो जाए उसे

लेकिन फ्लास्क की नली को तोड़ते ही सूप में जीवाणु नज़र आने लगे। 1864 में पास्चर ने अपने निष्कर्षों का सार्वजनिक रूप से एलान किया। कई अन्य व्यक्तियों ने प्रयोग को दोहराया और यही निष्कर्ष निकाला। तब यह बात साफ़ हो गई कि ''स्वतःउत्पत्ति'' जैसी कोई चीज़ नहीं होती है—न तो जीवाणुओं की और न ही पहली बरसात में मेंढकों और मछलियों के आकाश से

चेचक बैक्टीरिया





पोलियो वायरस





दुबारा चेचक या काउपॉक्स नहीं होता था। लगभग बीस वर्ष तक अध्ययन करने के बाद जेनर ने एक ख़तरनाक प्रयोग करने की ठानी। 14 मई, 1796 को उसने काउपॉक्स से पीड़ित एक दूध बेचने वाली महिला के शरीर पर उभरे छाले में एक सुई घुसाई और फिर इसी सुई से एक स्वस्थ बच्चे की चमड़ी को खरोंच दिया। इस बच्चे को कभी काउपॉक्स या चेचक नहीं हुआ था। बच्चे को काउपॉक्स हुआ और खरोंच की जगह पर एक छाला उभर आया।

जेनर दो महीने तक इंतजार करता रहा। बच्चे को तो अब काउपॉक्स नहीं होने वाला था। लेकिन क्या बच्चा चेचक से भी मुक्त हो गया था? जेनर ने फिर एक जोख़िम उठाया और दुबारा एक सुई से बच्चे की चमड़ी को खरोंचा। इस बार सुई चेचक के छाले में डाली गई थी। बच्चे को चेचक नहीं हुआ। दो वर्ष बाद जेनर ने यही प्रयोग एक बच्ची पर किया। उसने पाया कि काउपॉक्स का हल्का रोग लगाने के बाद वह लोगों को चेचक से हमेशा के लिए मुक्ति दिलवा सकता है।

चिकित्सा विज्ञान में काउपॉक्स को "वेक्सीनिया" कहा जाता है, जिसका लातीनी भाषा में अर्थ है—गाय। जेनर के इस तरीके को इसीलिए नाम दिया गया "वेक्सीनेशन", जिसे हम लोग टीका लगवाना कहते हैं। तो हर टीके में यही बात रहती है कि उस रोग के कुछ जीवाणु टीके के माध्यम से बच्चे में पहुंचाए जाते हैं, जब रोग होता है तो शरीर उससे लड़ता है और शरीर में ऐसी प्रतिरोधक क्षमता विकसित होती है कि भविष्य में कभी वह रोग हो ही नहीं।

हालांकि इस प्रकार से सभी रोगों को रोका नहीं जा सकता। क्योंकि चेचक की तरह बाकी रोगों का काउपॉक्स जैसा कोई भाई-भतीजा नहीं मिला। लेकिन इस बात से यह ज़रूर सोचा गया कि शायद एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक रोग फैलने पर रोक लगाना संभव हो।

हंगरी के एक डाक्टर सेम्मलवाइज़ एक प्रसूतिगृह में काम करते थे प्रसव के दौरान कई महिलाओं की मृत्यु हो जाती थी इससे डाक्टर बहुत परेशान थे। सेम्मलवाइज़ ने एक नियम बनाया कि सभी डाक्टर, मरीज के पास जाने से पहले कुछ खास रसायनों से हाथ धोएंगे। ऐसा करने पर अस्पताल में मृत्युदर एकदम कम हो गई। लेकिन बाकी डाक्टरों हो हाथ धोने का यह काम एक झंझट ही लगता था। उन्होंने सेम्मलवाइज़ का तबादला करवा दिया और वापस अपने रास्ते पर आ गए। अस्पताल में मृत्युदर फिर बढ़ गई।



प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिकों को जीवाणुओं के असर पता करने के लिए विभिन्न प्रयोग करने पड़ते हैं। इनमें से कई जोखिम भरे भी होते हैं। इस चित्र में एक वैज्ञानिक मलेरिया पैदा करने वाले रोगाणुओं के वाहक मच्छरों के झुंड में हाथ डालकर अपना शोधकार्य आगे बढ़ा रहा है।

आख़िरकार इन सब बातों की सफ़ाई फिर से पास्चर ने ही की। फ्रांस में शराब बनाने का एक बहुत बड़ा कारख़ाना है। एक बार वहां पर रखी शराब खट्टी होने लगी। लोग घबराए क्योंकि करोड़ों रुपए की शराब खराब होने का डर था। पास्चर ने देखा कि शराब में कुछ अतिरिक्त जीवाणु मौजूद हैं, जो नहीं होने चाहिए। ये जीवाणु शराब में अम्ल पैदा कर रहे थे। पास्चर ने कहा कि शराब को थोड़ा गर्म कर दिया जाए ताकि ये जीवाणु मर जाएं। चकित शराब उत्पादकों ने ऐसा ही कियां और शराब बच गई।

पास्चर के काम को एक जर्मन डाक्टर, रोबर्ट कोख ने आगे बढ़ाया। आहिस्ता-आहिस्ता यह बात स्थापित होती गई कि इन्हीं जीवाणुओं में से कुछ जिन्हें जर्म या कीटाणु कहते हैं, बीमारी की जड़ हैं।

आगे का इतिहास फिर कभी। हां, एक बात याद रहे-सभी जीवाणु कीटाणु के रूप में बीमारी नहीं फैलाते। बहुत सारे हमारी मदद भी करते हैं—मिट्टी में रहकर व अन्य कई प्रकार से। और यह बात भी सही है कि अधिकांश जीवाणु गर्म करने से मर जाते हैं। सोचो तो दूध को गर्म करके क्यों रखते हैं? और गर्म न करने पर दूध खराब क्यों हो जाता है? आपरेशन के समय भी डाक्टर अपने औजारों को अच्छी तरह क्यों उबालते हैं।

पास्चर ने यह विधि भी सुझाई कि किसी भी चीज़ को कीटाणु रहित करने के लिए लगभग 60 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर काफ़ी देर तक गर्म करना चाहिए। इस विधि को अभी भी पास्चुराइजेशन कहा जाता है।

□ विनोद रायना



नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे

अध्यापिका श्याओ के जाने से पहले खिलौने चुपचाप बैठे थे। कमरे में इतनी ख़ामोशी थी कि खिड़की पर गिरती बरफ़ की आवाज़ भी साफ़-साफ़ सुनाई दे रही थी।

जल्दी ही कमरे में हलचल शुरू हो गई। बंदर के लिए अपने पर क़ाबू पाना सबसे ज़्यादा मुश्किल था। वह पलक मारते ही बाक़ी जानवरों के बीच से उछल पड़ा और लाल काग़ज़ को नीचे गिराकर दरवाज़े की तरफ़ देखने लगा। अपने कंधे मटकाता हुआ वह दूसरे जानवरों से बोला, ''उठो दोस्तो, बाहर निकलो! अध्यापिका श्याओ बाहर जा चुकी है।''



सभी खिलौने आपस में बातचीत करने लगे।

''इतनी देर एक ही जगह बैठे-बैठे मेरी कमर दुखने लगी है!'' काला भालू शिकायत के स्वर में बोला और खड़ा हो गया।

''लेटे-लेटे मेरा सिर चकरा गया है!'' बड़ी गुड़िया ने शिकायत की। वह बड़ी मुश्किल से उठ पाई।

कुछ देर में सभी जानवर उठ गए। वे बड़े खुश नज़र आ रहे थे। गुदड़ीलाल ने ज्यों ही अपना सिर ऊपर उठाया, वह हक्का-बक्का रह गया। उसके सामने एक बाघ खड़ा था।

बाघ पीले रंग का था और उसके बदन पर काली धारियां बनी हुई थीं। उसकी पूंछ खंभे की तरह थी और मूंछें कांटों की तरह। उसके माथे पर चीनी भाषा में ''वाङ'' अंकित था। क्या तुम जानते हो, चीनी भाषा में ''वाङ'' का अर्थ क्या होता है? इसका अर्थ होता है ''राजा''।

बाघ को देखते ही गुदड़ीलाल थरथर कांपने लगा। ''क्या तुम सचमुच बाघ हो?'' उसने कांपती आवाज़ में पूछा।

''तुम बिलकुल ठीक कह रहे हो!'' बाघ बोला, ''मैं एक नन्हा बाघ हूं।''

यह सुनते ही गुदड़ीलाल कूदकर दो क़दम पीछे हट गया। उसकी नज़रें अब भी बाघ पर टिकी हुई थीं।

''डरो मत, मैं तुम्हें कोई नुक़सान नहीं पहुंचाऊंगा! मैं तुम्हें काटूंगा नहीं, खाऊंगा नहीं!'' बाघ ने कहा।

''बाघ बिलकुल ठीक कह रहा है!'' काला भालू बोल पड़ा, ''यह कपड़े का बाघ है। इसलिए न तो किसी को काटता है और न खाता है।''

''अगर तुम किसी को काटते-खाते नहीं, तो बड़ी-बड़ी आंखों से मुझे घूर क्यों रहे हो?'' गुदड़ीलाल ने पूछा।

''इसमें मेरा क्या कसूर है?'' बाघ ने आवाज़ दिया, ''कसूर तो उनका है जिन्होंने मेरी आंखें इतनी डरावनी बनाई हैं।''

बंदर को लगा कि गुदड़ीलाल अब भी डरा हुआ है। इसलिए वह छलांग लगाकर बाघ के पास जा पहुंचा, ''डरने की क्या ज़रूरत है? यक़ीन रखो, यह बाघ तुम्हें हरग़िज़ नहीं काटेगा। ज़रा मुझे तो देखो, मैं इससे कहां डरता हूं? मैं इसकी पूंछ भी खींच सकता हूं।''

नन्हा बंदर सचमुच बाघ की पूंछ खींचने लगा। वह उसकी पूंछ खींचता चला गया। यह देखकर सब खिलौने हंस पड़े।

बाघ को दर्द हो रहा था और बड़ा गुस्सा आ रहा था। फिर भी वह चुपचाप बैठा रहा। वह साबित कर देना चाहता था कि वह एक बिलकुल शरीफ़ बाघ है और लोगों को काटता-खाता हरग़िज़ नहीं।



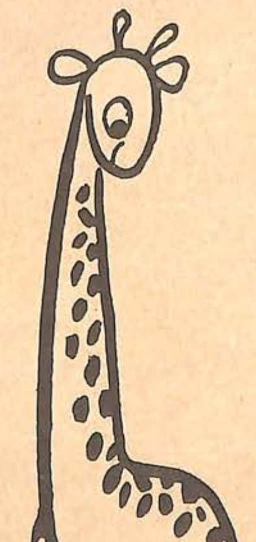


बड़ी गुड़िया गुदड़ीलाल की हालत देखकर बोली, "यह गुड्डा बड़ा डरपोक है! ऐसा बुज़दिल गुड्डा मैंने कभी नहीं देखा!"

गुदड़ीलाल उसकी बात बरदाश्त नहीं कर पाया, "कौन कहता है कि मैं डरपोक हूं! कौन कहता है कि मैं बुज़दिल हूं!" वह ज़ोर से चिल्लाया।

अभी उसकी बात ख़त्म ही हुई थी कि अचानक बाहर से पटाख़ों की आवाज़ आने लगी। समारोह शुरू हो चुका था। पटाख़े बच्चे छोड़ रहे थे। पटाख़ों की आवाज़ इतनी तेज़ थी कि गुदड़ीलाल डर के मारे जिराफ के पेट के नीचे छिप गया।

पटाख़ों की आवाज़ बंद होने के बाद सब लोग गुदड़ीलाल को ढूंढ-ढूंढकर हार गए। पर वह कहीं नहीं मिला। अंत में जब वह जिराफ के पेट के नीचे छिपा दिखाई दिया, तो सब लोग हंसते-हंसते लोटपोट हो गए।



"तुम सचमुच बड़े डरपोक हो!" बड़ी गुड़िया ने कहा, "तुम लड़का कहलाने लायक़ हरगिज़ नहीं हो!"

"इसे लड़का कौन कह सकता है! इसके अंदर लड़के जैसा एक भी गुण नहीं है!" बत्तख बोल पड़ी।

बंदर कूदता-फांदता हुआ गुदड़ीलाल के पास जा पहुंचा और बोला, "मैं नहीं समझता कि यह लड़का है!" चीन में जब लड़कों के सिर के बाल काटे जाते हैं तो बालों का एक गुच्छा सिर पर ही रहने दिया जाता है। यह पक्का करने के लिए कि वह लड़का ही है, बंदर ने गुदड़ीलाल की टोपी उसके सिर से हटाकर नीचे गिरा दी। "हां-हां! अरे, यह तो सचमुच एक लड़का ही है!" शैतान बंदर खिलखिलाकर हंस पड़ा। दूसरे खिलौने भी ठहाका मारकर हंस पड़े।

"अपनी बुज़दिली पर तुम्हें शर्म आनी चाहिए!" नन्ही बिल्ली ने कहा।

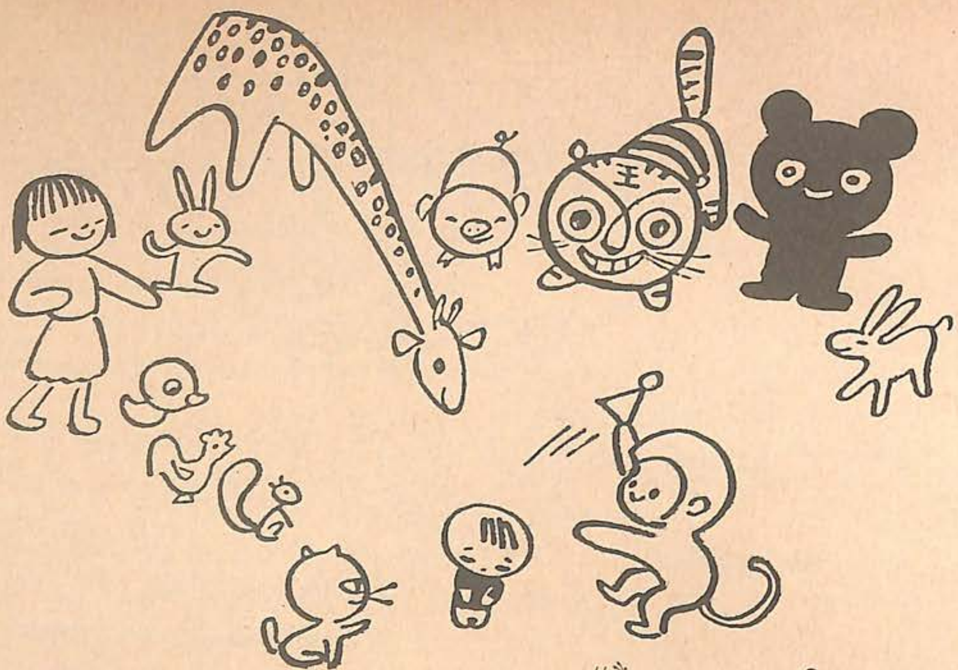
गुदड़ीलाल ने शर्म से सिर झुका लिया। उसे बड़ा दुख हुआ।

"दुखी होने की ज़रूरत नहीं। बड़े होकर तुम भी बहादुर बन जाओगे!" बत्तख ने कहा। उसे गुदड़ीलाल पर तरस आ रहा था। वह उसकी टोपी उठाने आगे बढ़ी, "तुम्हारी यह टोपी सचमुच कितनी सुंदर है!" यह कहकर उसने गुदड़ीलाल को टोपी पहना दी और उसे सान्त्वना देने लगी।

"यह टोपी सुंदर ज़रूर है!" बड़ी गुड़िया एकदम बोल पड़ी। "लेकिन यह तो मेरे रूमाल से बनी है। कुछ देर पहले तक मेरा रूमाल मेरी जेब में था। मुझे पता ही नहीं चला कि किसी ने इसे टोपी में बदल दिया है!"

यह सुनकर बेचारा गुदड़ीलाल सिसकियां भरने लगा।

सब लोग ख़ामोश हो गए। वे काले भालू को अपना बड़ा भाई मानते थे, क्योंकि सबसे पहले उसे



ही बनाया गया था। इसलिए सब उससे डरते भी थे। बड़ी गुड़िया एकदम चुप हो गई। बंदर और बिल्ली को भी अपने कथन पर खेद हुआ।

"किसी और चीज़ के बारे में बात करो," काले भालू ने सुझाव दिया। "कल हम सब एक-दूसरे से जुदा हो जाएंगे।"

"तुम ठीक कह रहे हो," बिल्ली ने कहा, "कल सुबह होते ही हम सब खिलौनों को बच्चों के बीच बांट दिया जाएगा। हर बच्चे को एक-एक खिलौना मिलेगा।"

दूसरे कमरे में बच्चों ने गाना शुरू कर दिया था। पियानो की आवाज़ साफ़ सुनाई पड़ रही थी। गाना इतना सुरीला था कि सभी खिलौने ध्यान लगाकर सुनने लगे।



"मैं एक न एक दिन ज़रूर गाना सीखूंगी," बत्तख ने बड़ी उम्मीद से कहा।

"तो तुम्हें किसी ऐसे बच्चे के साथ जाना चाहिए जो गाना गा सकता हो," बंदर बोला, मानो कल वह खुद ही बच्चों को खिलौने बांटने वाला हो।

"ठीक है! मैं किसी ऐसे बच्चे के साथ जाना चाहती हूं जो गाना गा सकता हो।"

"और तुम किसके साथ जाना चाहती हो?" बंदर ने बिल्ली से पूछा।

"मैं किसी ऐसे बच्चे के साथ जाना चाहती हूं जो सफ़ाई पसंद हो," बिल्ली ने कहा। "वह मुझे हर रोज़ नहलाएगा, एक बार नहीं दो बार!'

"ठीक है," बंदर बोला। "तुम्हें किसी लड़की के साथ जाना चाहिए। लड़कियों को ऐसे काम पसंद है। नहलाने के बाद वह तुम्हें पाउडर भी लगाएगी। बाघ भाई, तुम बताओ, तुम किसके साथ जाना चाहते हो?"

"मैं किसी लड़के के साथ जाना पसंद करूंगा," बाघ बोला। "लड़कियां अच्छी नहीं होतीं।"

"कौन कहता है, लड़कियां अच्छी नहीं होतीं!" बड़ी गुड़िया बोल पड़ी, "मुझे लड़के बिलकुल पसंद नहीं हैं। वे बड़े शैतान होते हैं।"

"तुम बिलकुल ठीक कहती हो," नन्ही बिल्ली ने सहमति प्रगट की।

बंदर तटस्थ रहना चाहता था। लेकिन अब उससे

चुप नहीं रहा गया और वह बिल्ली को मुख़ातिब करके एकदम बोल पड़ा; "यह कैसे हो सकता है? लड़के सबसे अच्छे होते हैं!"

"लड़के बिलकुल अच्छे नहीं होते!"

"वे अच्छे होते हैं!"

"बिलकुल अच्छे नहीं होते!"

"अच्छे होते हैं!"

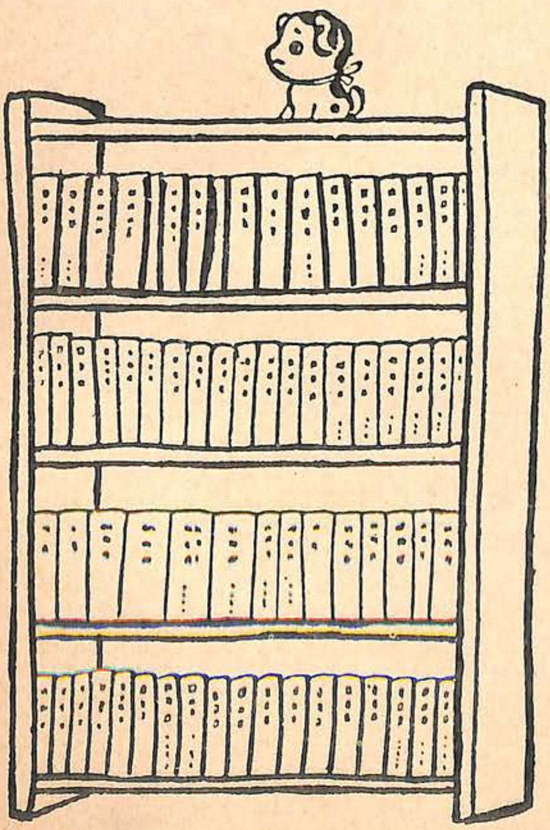
दूसरे खिलौने भी इस वाद-विवाद में शामिल हो गए।

अचानक उन्हें किताबों के शेल्फ से एक आवाज़ सुनाई पड़ी, "लड़के बिलकुल अच्छे नहीं होते।"

सब लोग ताज्जुब में पड़ गए। आवाज़ आख़िर किसकी थी, कोई नहीं जान पाया। केवल जिराफ ही ऐसा था जिसने अपनी लंबी टांगों और ऊंची गरदन से किताबों के शेल्फ में छिपे नन्हे कुत्ते को देख लिया।

"यह आवाज़ नन्हे कुत्ते की है," जिराफ ने धीरे से दूसरों को बताया। "वह किताबों के शेल्फ पर बैठा हुआ है।"

"नन्हे कुत्ते, तुम लड़कों को बुरा क्यों समझते हो?" बाघ ने गुस्से से पूछा।



"वे बड़े नटखट होते हैं," नन्हा कुत्ता ज़ोर से बोला। "जब लड़कियां मेरे साथ खेलती हैं, तो मुझे बड़ा प्यार करती हैं और प्यार से थपकियां देकर सुला देती हैं। पर लड़के मेरे गले में रस्सी बांधकर मुझे ज़ोर से खींचते हैं, जिससे मेरा बदन मिट्टी से सन जाता है।..."

"अब आगे बताने की ज़रूरत नहीं है," बंदर ने उसे बीच में ही टोक दिया। "यहां खड़े-खड़े बतियाने की जगह जुकाम की दवा क्यों नहीं खाते? लगता है, तुम्हारी नाक पर असर हो गया है।"

"लेकिन यह जुकाम के कारण नहीं हुआ," नन्हे कुत्ते ने विरोध किया। "लड़के मेरी नाक बार-बार खींचते रहते हैं। इसलिए उसकी नोक कुछ टूट गई है।"

सब लोग भौचक्के रह गए। वह बिलकुल ठीक कह रहा था। नन्हे कुत्ते की नाक की नोक सचमुच नदारद थी। यही वजह थी कि उसकी नाक से अजीब-सी आवाज़ निकल रही थी। हां, देखने में यह ज़रूर लग रहा था कि उसे जुकाम हो गया है।

लड़कों के हिमायती खिलौनों को यह समझ में नहीं आ रहा था कि वे अपने पक्ष में क्या दलील दें।

केवल बाघ धीरे से बुदबुदाया, "अगर लड़कों ने ज़रा तुम्हारी नाक खींच ली, तो तुम पर कौन सा आसमान गिर पड़ा? मैं तो ऐसी बातों का कभी बुरा नहीं मानता।"

बाघ को अपनी नाक खिंचवाने में भला क्या तक़लीफ़ होती? उसकी नाक तो कलम से बनाई गई थी।

काले भालू की नाक सुई से सिली हुई थी। उसने अपनी नाक धीरे से सहलाई और धीमी आवाज़ में बोला, "अगर किसी की नाक खींची जाए, तो उसे ज़्यादा दर्द नहीं होना चाहिए। फिर भी नाक खींचना कोई अच्छी बात नहीं है!"

बड़ी गुड़िया को यह देखकर खुशी हो रही थी कि बंदर और काला भालू कुछ भी नहीं बोल पा रहे। "अब तो साबित हो गया कि लड़कियां अच्छी होती हैं," उसने बड़े गर्व से कहा।

"तुम ठीक कहती हो। लड़कियां लड़कों से लाख दर्जे अच्छी होती हैं!" बिल्ली ने उसकी हां में हां मिलाते हुए कहा।

"तुम्हारी बात से मैं भी सहमत हूं," बत्तख बोल पड़ी।



लेकिन बंदर यह सुनकर गुस्से से तमतमा उठा। वह बोला, "लड़कियां अच्छी नहीं होतीं, बिलकुल अच्छी नहीं होतीं!"

"यह सिर्फ़ तुम कह रहे हो," बड़ी गुड़िया ने तिरस्कार भरे शब्दों में कहा। "वे चाहे जैसी भी होती हों, नन्हे कुत्ते की नाक तो कभी नहीं खींचतीं!"

"लड़कियां वास्तव में बड़ी डरपोक होती हैं," बंदर तपाक से बोला। "वे कुत्ते को देखते ही डर के मारे भाग खड़ी होती हैं। पर लड़के बहादुर होते हैं। वे किसी से नहीं डरते। यही वजह है कि वे कुत्ते की नाक खींच सकते हैं, पेड़ या मकान पर चढ़ सकते हैं, अथवा... ।"

"बिलकुल ठीक है!" काला भालू और बाघ एक स्वर में बोल पड़े।

लड़कों का पक्ष लेने वाले सभी खिलौने खुश हो गए।

यह सब सुनकर बत्तख और बिल्ली बड़ी परेशान हो रही थीं। लेकिन बड़ी गुड़िया शांत बैठी थी। कुछ देर सोचने के बाद वह बोली, "अभी-अभी मेरे दिमाग़ में एक बात आई है। सभी लड़के बहादुर कहां होते हैं? ज़रा गुदड़ीलाल की बहादुरी तो देखो! वह भी तो लड़का है!"

"बिलकुल ठीक है!" बत्तख और बिल्ली एक स्वर में बोल पड़ीं।

बंदर, बाघ और काले भालू को हार माननी पड़ी।

बेचारा गुदड़ीलाल बहुत उदास हो गया। उसने अपने आंसू पोंछे और सिर लटकाकर चुपचाप बैठ गया। नन्ही बिल्ली, बड़ी गुड़िया और दूसरे खिलौनों को, जो उसकी कायरता की हंसी उड़ा रहे थे, वह दोषी नहीं ठहरा सकता था। डरपोक होना वास्तव में एक बुरी बात थी। डरपोकपन से वह अकेला ही शर्मिंदा नहीं था बल्कि काला भालू, बाघ और बंदर भी शर्मिंदा थे।

गुदड़ीलाल बहुत देर सोच में पड़ा रहा। कुछ समय बाद स्कूल का समारोह ख़त्म हो गया। सब बच्चे अपने माता-पिता, दादा-दादी के साथ घर लौट गए। खिलौने भी खेलते-खेलते थक गए और सो गए। गुदड़ीलाल अकेला रह गया। वह अब भी सोच में पड़ा हुआ था।

अंत में उसने बहादुर बनने का पक्का संकल्प कर लिया, 'कल मैं किसी नए घर में चला जाऊंगा। अगर मुझे किसी लड़के के साथ भेजा गया, तो क्या वह मेरी कायरता पर हंसेगा नहीं? अगर मुझे किसी लड़की के साथ भेजा गया, तो क्या वह बड़ी गुड़िया की तरह मेरी खिल्ली नहीं उड़ाएगी?"

नए साल की पूर्वसंध्या बीत गई। उस रात गुदड़ीलाल अच्छी तरह नहीं सो सका।

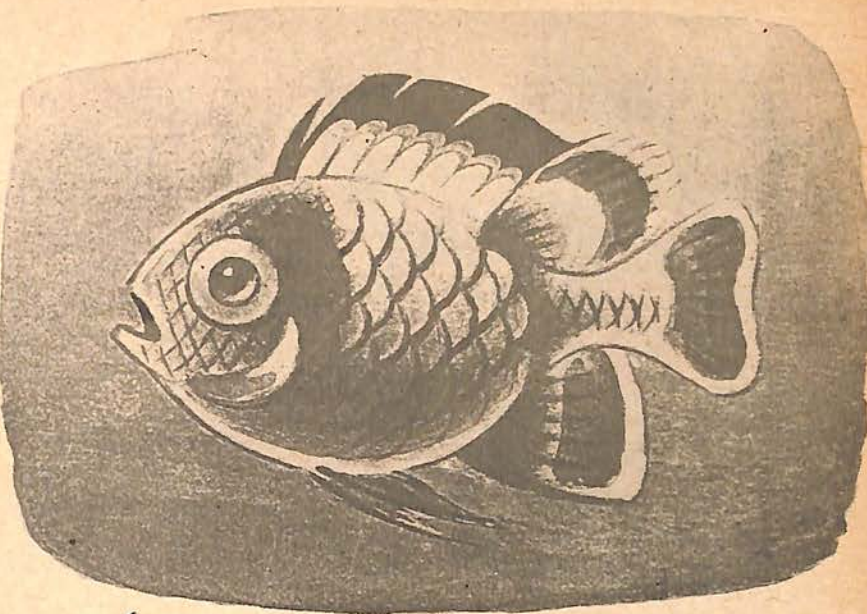
गुदड़ीलाल किस बच्चे के पास पहुंचा? वह किसी लड़की को मिला या लड़के को? यह सब अगले अंक में।

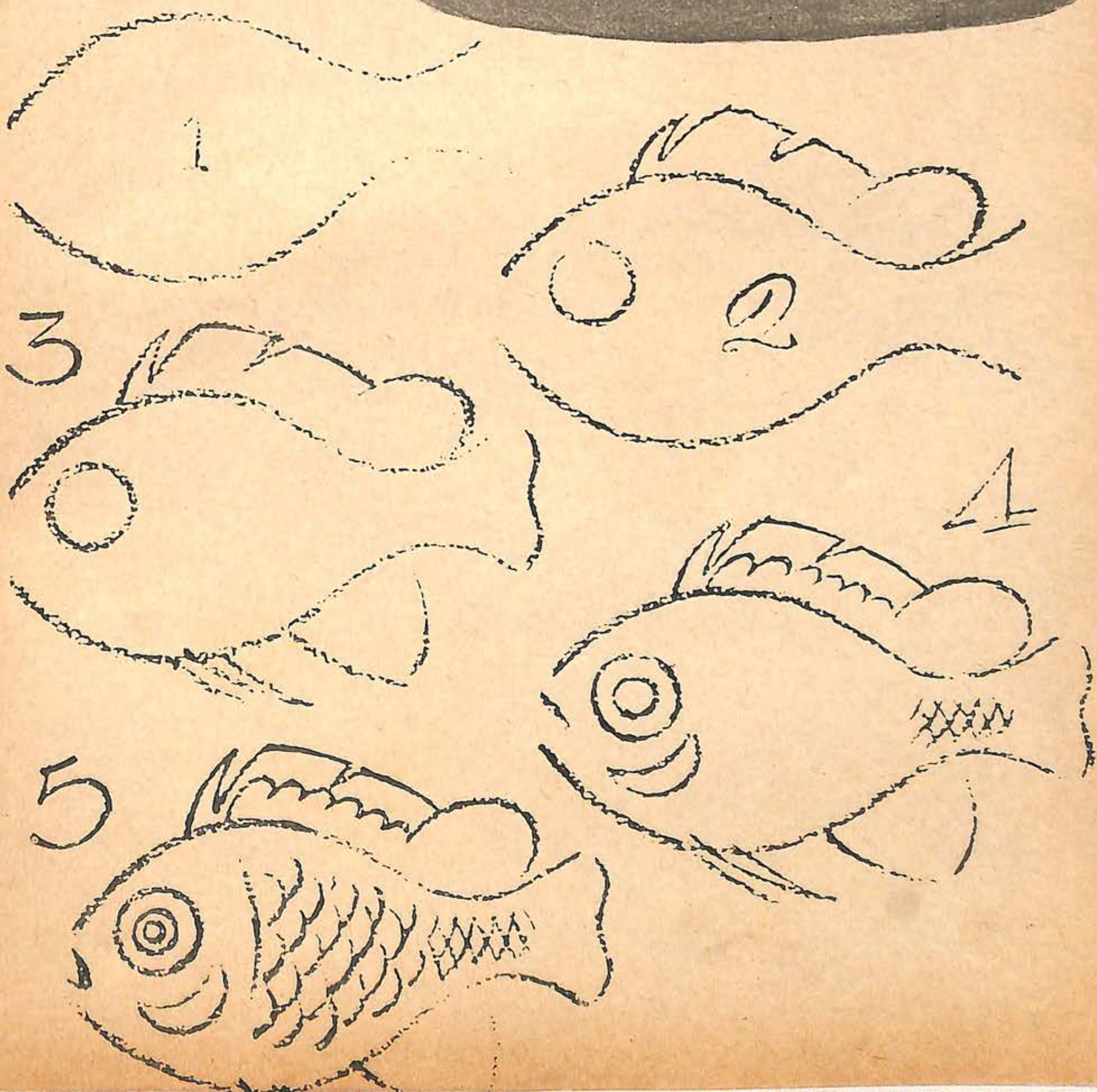
मूल लेखक : सुन यओच्युंन सभी चित्र : शन फेइ
अनुवाद : जानकी एवं श्यामा बल्लभ

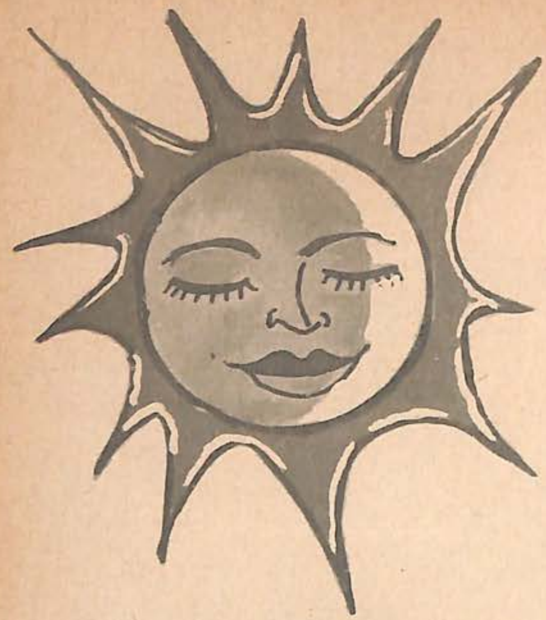
तुम भी बनाओ

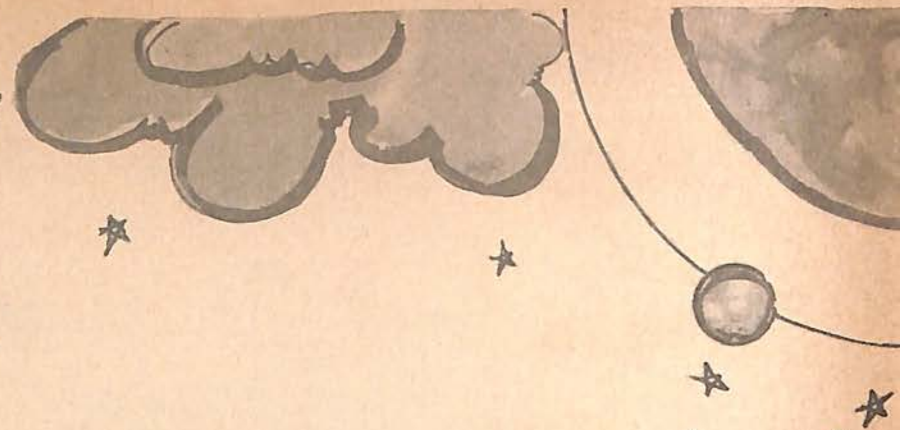
पिछली बार तुमने इस स्तम्भ में एक साधारण मछली का चित्र बनाया था।

इस बार एक अन्य तरह की मछली का चित्र बनाकर देखते हैं।







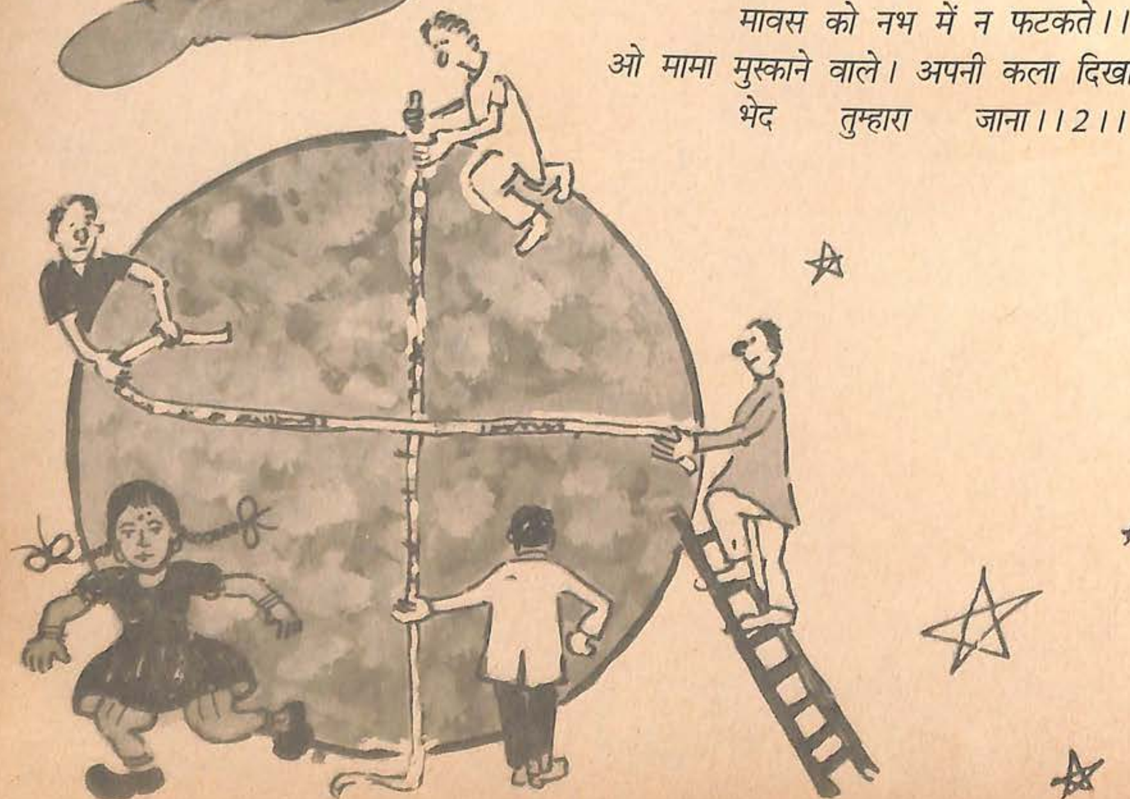


चंदा भूलो



दूध धुले मुख वाले चंदा भूलो अब मुस्काना।
धरती वाले जान चुके हैं तेरे घर तक आना।।
ना कोई भी बुढ़िया तुम पर बैठी काते सूत।
ना ही कोई काला-काला रहता तुम पर भूत।।
गेंद सरीखे भले गोल तुम।
नहीं रहस्य की रहे खोल तुम।।
ओ चांदी की थाली जैसे। ओ मक्खन की प्याली जैसे।।
अब न अधिक इतराना।।1।।

तुम धरती के उपग्रह इसके चक्कर काट रहे हो।
सूरज से उजियाला लेकर जग को बांट रहे हो।।
पूनम को तुम पूर्ण चमकते।
मावस को नभ में न फटकते।।
ओ मामा मुस्काने वाले। अपनी कला दिखाने वाले।।
भेद तुम्हारा जाना।।2।।











अब मुस्काना

बंजर-बंजर रेत तुम्हारी अनुपजाऊ मिट्टी।
और सुनोगे तो गुम हो जाएगी सिट्टी-पिट्टी।।
कहीं पहाड़ हैं, कहीं गर्त है।
चट्टानों की कहीं पर्त है।।
तुम पर हवा न तुम पर पानी। ना तुम पर जंतु-ज़िंदगानी।।
रहा न कुछ अनजाना।।3।।

तेरे भूतल पर कल होंगे हम लोगों के आंगन घर।
वहां बसाएंगे आकर के बड़े अनोखे, भव्य नगर।।
धर्म न होगा, जात न होगी।
देश, प्रांत की बात न होगी।।
अमृत-घट कहलाने वाले। रातों को चमकाने वाले।।
हमें न तुम ठुकराना।।4।।

□ जितेंद्र शंकर बजाड़
चित्र : आशीष श्रीवास्तव





खंजन

दुनिया पक्षियों की - 7



वर्षा ऋतु के समाप्त होते-होते लाखों छोटे-बड़े पक्षी हिमालय की ऊंचाइयों से उतर कर देश के मैदानी प्रदेशों में फैल जाते हैं। इन प्रवासी पक्षियों में शायद सबसे परिचित और आसानी से पहचाना जाने वाला पक्षी खंजन है। इसीलिए किसी कवि ने कहा :

जानी शरद ऋतु खंजन आए
पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए।

खंजन की पहचान यह है कि वह अपनी पूंछ ऊपर-नीचे हिलाता रहता है—कुछ-कुछ इस तरह जैसे धोबी कपड़ों को पछाड़ता है। इसीलिए इसे 'धोबिन' भी कहा जाता है।

गौरैया के आकार वाले इस पक्षी का पेट तथा सिर का निचला भाग सफ़ेद होता है और सिर के ऊपर का भाग काला। सफ़ेद सीने पर काले रंग का एक धब्बा होता है। पीठ तथा पंख का ऊपरी भाग भूरे रंग के होते हैं। नर और मादा खंजन पक्षियों में कोई अंतर नहीं होता।

खंजन अपना अधिकांश समय ज़मीन पर रेंगने वाले छोटे कीड़ों और इल्लियों को खाने में बिताते हैं। इन्हें खेतों, मैदानों, बगीचों और घनी बस्तियों में देखा जा सकता है। पूंछ को लगातार ऊपर-नीचे हिलाते, कीड़ों की तलाश में घूमते खंजन बड़ा मनोरंजक दृश्य प्रस्तुत करते हैं।

अप्रैल-मई में खंजन उड़कर कश्मीर, तिब्बत, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, रूस आदि ठंडे प्रदेशों में पहुंच जाते हैं। वहां वे किसी टूटी हुई दीवाल के छेद में या पत्थरों के ढेर में प्याले के आकार का घोंसला बनाते हैं। घोंसला बनाने के लिए खंजन घास के तिनकों, बालों और घास की जड़ों का उपयोग करते हैं। मादा 4 से 6 सफ़ेद रंग के अंडे देती है, जिन पर कत्थई रंग के धब्बे होते हैं। माता और पिता दोनों मिलकर बच्चों का लालन-पालन करते हैं।

यह विवरण 'सफ़ेद खंजन' का है। खंजन की बहुत-सी अन्य जातियां हैं। ये जातियां ऐसे स्थानों पर रहना अधिक पसंद करती हैं जहां पानी भरा हो। हालांकि इन सबका भोजन तथा स्वभाव सफ़ेद खंजन से मिलता-जुलता है। सबसे बड़ी समानता तो पूंछ को ऊपर-नीचे हिलाते रहना ही है।

तीन ऐसी जातियां भी हैं जिनके शरीर पर पीला रंग होता है। रंग की मात्रा कम या अधिक हो सकती है। ये तीन जातियां क्रमशः पिलक्या, पानी का पिलक्या और पिलख कहलाती हैं। तीनों ही जातियां प्रवासी हैं।

खंजन की एक अन्य जाति 'अबलख खंजन' या 'चितकबरी खंजन' है। यह अन्य सभी जातियों से कुछ बड़ी होती है, लेकिन यह प्रवासी नहीं है। यह वर्ष भर एक ही स्थान पर रहती है और प्रायः पानी के पास ही पाई जाती है। खंजन की अन्य जातियों की तुलना में इसकी आवाज़ अधिक मधुर होती है।

□ **अरविंद गुप्ते**

(चित्र सौजन्य : बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी)

धारावाहिक-2

भूगर्भ की यात्रा

पिछले अंक में तुमने पढ़ा...

प्रोफेसर लिडेनब्रॉक, लंबे, दुर्बल और फ़ौलाद जैसे शरीर वाले पचास वर्षीय व्यक्ति थे। वे यूनिवर्सिटी में भूगर्भशास्त्र पढ़ाया करते थे। उनका एक शिष्य था, जो सहायक भी था। प्रोफ़ेसर और बातों के अलावा पुस्तक-प्रेमी भी थे। एक दिन उनके हाथ 'हीम्स क्रिंगला' नाम की एक पुस्तक पड़ गई। उस पुस्तक को लेकर वे बेहद उत्साहित थे और उनका शिष्य थोड़ा परेशान...! अब आगे पढ़ो...

रहस्यमय पर्चा

उसी समय एक गंदा और पुराना पर्चा उस पुरानी किताब से निकल कर, ज़मीन पर आ गिरा।

मेरे चाचा उसकी ओर लपके। एक पुरानी पुस्तक में बंद एक महान् युग का, शायद कई सौ साल पुराना पर्चा उनके लिए बड़े महत्त्व का दिखाई देता था। पांच इंच लंबे और तीन इंच चौड़े उस टुकड़े को सावधानी से मेज़ पर रखते हुए वे चिल्लाए, "अरे यह क्या है।"

प्रोफ़ेसर उस लिपि को कुछ मिनट तक देखते रहे, और फिर बोले, "अरे यह तो र्‌यूनिक है। इस के शब्द तो बिलकुल किताब के शब्दों की तरह ही हैं। लेकिन इनका अर्थ क्या है?"

मेरा ख़्याल है कि कुछ शैतानों ने परेशान आदमियों को और भी अधिक परेशान करने के लिए र्‌यूनिक लिपि का आविष्कार किया होगा। यह देखकर कि मेरे चाचा जी उसे समझ नहीं सके, मैं बिलकुल दुःखी नहीं हुआ।

"हां, यह आइसलैंड द्वीप की पुरानी लिपि है।" उन्होंने खुद से ही कहा।

निःसंदेह प्रोफ़ेसर लिडेनब्रॉक जानते थे कि यह आइसलैंड की पुरानी लिपि है, और इन भाषाओं के वे विशेषज्ञ समझे जाते थे। यही नहीं कि संसार में बोली जाने वाली 2000 भाषाएं वह बोल ही लेते हों, बल्कि उनके विषय में अच्छा ज्ञान रखते थे।

अब कठिनाई यह थी कि उनके स्वभाव की सारी व्यस्तता का उभर आना निश्चित था और मुझे भय ही था अब फिर से भाषा-विवाद का विस्फोट होने वाला है। तभी घड़ी ने दो बजाए और मार्था कमरे के किवाड़ खोलकर बोली।

"खाना मेज़ पर रक्खा है।"

मेरे चाचा ने उसे बहुत बुरी तरह डांटा।

मार्था भाग गई और उसके बाद ही मैं भागा और खाने वाले कमरे की अपनी कुर्सी पर जा बैठा।

मैंने कुछ मिनट तक प्रतीक्षा की पर प्रोफ़ेसर नहीं आए।

यह पहला अवसर था जब कि प्रोफ़ेसर को भोजन जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए देर हुई थी। और भोजन भी कैसा? बेहद स्वादिष्ट भोजन। इसे भी मेरे चाचा जी एक पुराने से पर्चे के कारण छोड़े दे रहे थे। मुझसे तो रहा नहीं गया, और मैंने भर पेट भोजन किया। यहां तक कि उनका हिस्सा भी गड़प कर गया।

"मैंने उन्हें कभी भी ऐसा नहीं देखा।"

मार्था चीखी, "मिस्टर लिडेनब्रॉक खाने के लिए नहीं आए। मैं इस पर विश्वास नहीं कर सकती। मुझे भय है कि कोई भयानक बात होने वाली है।"

मेरा विचार था कि भयानक बात केवल यही हो सकती है कि मेरे चाचा जी जब देखेंगे कि उनका भोजन किसी और ने खा डाला है, तब वे गुस्सा होने लगेंगे।

मैं अपना भोजन समाप्त ही कर पाया था कि गरज के समान मुझे एक स्वर ने बुलाया और मैं कमरे को भागा।

"यह निःसंदेह ही र्‌यूनिक है," प्रोफ़ेसर बोले "लेकिन इसमें एक रहस्य है, जिसे मैं खोजूंगा या फिर," और फिर कुछ भद्दे शब्दों से वाक्य पूरा किया। "बैठो यहां," मेज़ की ओर संकेत करते हुए बोले, "और लिखो।"

मैं तुरंत ही तैयार हो गया।

"अब इन शब्दों के स्थान पर मैं कुछ रोमन लिपि के शब्द कहूंगा। हम देखेंगे कि हम कहां पहुंचते हैं। लेकिन ध्यान रहे कोई गलती न कर देना।"

मेरे चाचाजी ने शब्दों को पढ़ना आरम्भ किया। मैंने पूरी सावधानी रक्खी। एक के बाद एक शब्द बोला जाता रहा और मैं लिखता गया।

जब मैंने लिखना समाप्त किया तो मेरे चाचा जी ने मेरे हाथ से काग़ज़ ले लिया और काफ़ी देर तक उसे ध्यान से देखते रहे।

"इसका क्या मतलब है?" उन्होंने पूछा। मैं उन्हें



बता नहीं सका। उन्होंने दोबारा पूछा भी नहीं। वे ख़ुद ही बोलने लगे।

"बड़ी विचित्र भाषा है। शायद इसका मतलब इन मिश्रित शब्दों में ही छिपा है। इन शब्दों को उनके उचित स्थानों पर रख देने से इनके मतलब का हमें ज्ञान हो सकता है। शायद किसी महान् आविष्कार का हल हमारे पास है।"

मेरे विचार से यह सब बेकार था, लेकिन ऐसा कहने का साहस मुझमें था नहीं।

प्रोफ़ेसर ने किताब और पर्चे को एक बार फिर उठाया और उनकी तुलना करने लगे।

"ये दोनों एक ही हाथ के लिखे हुए नहीं है," वे बोले। "इस पुस्तक और पर्चे के लिखे जाने के बीच लगभग 200 वर्षों का अंतर है। इसे मैं सिद्ध भी कर सकता हूं। अतः मैं सोचता हूं कि यह पर्चा किसी ऐसे व्यक्ति ने लिखा है जिसके पास यह किताब रही होगी। लेकिन वह था कौन? मुझे आश्चर्य है कि उसने पुस्तक के किसी भाग में अपना नाम क्यों नहीं लिखा।"

और तब मेरे चाचा जी पुस्तक के प्रारम्भिक पृष्ठों को परीक्षा की दृष्टि से देखने लगे। पहले ही पृष्ठ के पीछे एक गंदा सा चिह्न उन्होंने ढूंढ़ निकाला। ध्यान से देखने पर उसमें कुछ शब्द भी दिखाई दिए। वे अपने चश्मे से उसे बार-बार देखते रहे। उनको साफ़-साफ़ नकल कर लिया।

"जर्ने सैलन सेम," वे चिल्लाए। "यह 300 वर्ष पूर्व के प्रसिद्ध वैज्ञानिक का नाम है।"

मैंने अपने चाचा जी को प्रशंसा की दृष्टि से देखा।

"वे योग्य मनुष्य," वे कहते गए "अपने समय के सच्चे वैज्ञानिक थे। उन्होंने ऐसे आविष्कार किए जो हमें अब भी आश्चर्य-चकित कर सकते हैं। इस रहस्यमयी भाषा में किसी आश्चर्यजनक आविष्कार को छिपाया होगा। ऐसा ही होना चाहिए। ऐसा ही है भी।"

"कोई संदेह नहीं," मैंने उत्तर दिया। "लेकिन एक आश्चर्यजनक आविष्कार को छिपाए जाने का कारण क्या हो सकता है?"

"कारण क्या है? यह मैं नहीं जानता। फिर भी हमें शीघ्र ही ज्ञात हो जायगा। मैं इसका रहस्य पा जाऊंगा। जब तक मैं इसे पा न लूंगा, मैं न तो खाना ही खाऊंगा और न सोऊंगा ही।"

"हाय, " मैंने सोचा, "अच्छा ही हुआ जो मैंने आज दो जनों का खाना खा लिया है," मैंने मन में ही कहा।

मेरे चाचा बोले, "सबसे पहले हमें पुस्तक की भाषा समझनी है। इस कागज पर 132 अक्षर लिखे हुए हैं, जिसमें 79 स्वर और 53 व्यंजन हैं। मेरे विचार से यह दक्षिण की भाषा है।"

मुझे भी यह ठीक जंचा। "लेकिन यह है कौन सी भाषा?"

मैं उनके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा, क्योंकि मैं जानता था कि ऐसे उत्तर देने में वे बहुत चालाकी कर जाते थे।

"सेकनसेम," वे कहते गए "एक बहुत विद्वान् मनुष्य था। मेरे विचार से उस समय की प्रचलित भाषा लैटिन में ही यह लिखा है।"

मुझे आश्चर्य था। ऐसे बेढंगे और विचित्र शब्द मुझे रोज़ की सरल और प्रवाहमयी भाषा के प्रतीत नहीं हुए।

"हां, लैटिन ही है," मेरे चाचा बोले, "लेकिन खिचड़ी लैटिन में।"

"बहुत अच्छा," मैंने सोचा, 'अगर आप इसे पढ़ सकें, तो प्यारे चाचा जी! आपको समझूंगा बड़े काबिल हैं।'

"हमें उसकी प्रारंभ से अंत तक परीक्षा करनी

है।" उस काग़ज़ को जिसमें मैं लिख रहा था, मेरे हाथ से लेते हुए वे बोले।

"यहां पर 132 शब्द ग़लत क्रम से लिखे हुए हैं। मेरे विचार से पहले यह संदेश क्रम से ही लिखा गया। और फिर उसे किसी नियम के द्वारा उलट-पुलट कर दिया गया जिसे कि हमें जानना है। जिसके पास भी इसकी 'कुंजी' होगी, इसे सरलता से पढ़ सकता है। लेकिन कुंजी है कहां?"

मैंने जानबूझ करके ही उत्तर न दिया। मैं अपने सामने दीवार पर लटक रहे चित्र की ओर देख रहा था। यही चित्र ग्रॉबेन का था जो कि इस समय घर गई हुई थी। उसकी अनुपस्थिति से मैं बहुत दुःखित था। हम दोनों एक दूसरे से प्रेम करते थे। हमने विवाह बंधन में शीघ्र ही बंध जाने का निश्चय भी कर लिया था। लेकिन मेरे चाचा जी इसके विषय में कुछ भी न जानते थे, क्योंकि वे भूगर्भशास्त्र में ही अधिक व्यस्त रहते थे। और प्रेम जैसी बातें उनकी समझ के बाहर थीं।

ग्रॉबेन आकर्षक लड़की थी। उसका रंग गोरा, आंखें नीली तथा स्वभाव गंभीर था। इस लड़की के चित्र ने मेरे मस्तिष्क से पुरानी पुस्तकों और पर्चों का ध्यान हटा दिया और उनके स्थान पर मधुर स्मृतियां जाग उठीं।

मैं सदा ग्रॉबेन के साथ काम करते हुए समय व्यतीत करने की कल्पना किया करता था। वह रोज़ ही चाचा जी के पत्थरों को क्रम से रखने में मेरी सहायता किया करती थी। ग्रॉबिन को भी भूगर्भ शास्त्र का अच्छा ज्ञान था। विज्ञान के गंभीर प्रश्नों पर विचार करना उसे बहुत प्रिय था। कितनी सुखद घड़ियां थीं वे जिन्हें हम साथ-साथ अध्ययन करते हुए व्यतीत करते थे।

जब हम काम समाप्त कर चुकते तो नदी के किनारे घूमने जाया करते थे बात-चीत करते हुए और हाथ में हाथ डाल कर। मैं उसे हंसाने के लिए मज़ेदार कहानियां सुनाया करता था।

इन्हीं बातों को सोच रहा था कि चाचा जी ने मेज़ पर एकाएक थपकी-सी दी, जिससे एक बार फिर मेरा ध्यान उनकी ओर चला गया।

"इधर देखो," वे बोले, "मुझे लगता है कि अगर कोई किसी संदेश में शब्दों को मिश्रित करेगा तो वह शब्दों को ऊपर से नीचे लिखने की बात ही अधिकतर सोचेगा।"



"हो सकता है," मैंने कहा।

"अच्छा देखें, हमें क्या करना चाहिए। कोई वाक्य इस काग़ज़ के टुकड़े पर लिखो। पहले ऊपर से नीचे की ओर और फिर एक सीधी रेखा में।"

मैंने वैसे ही लिखा जैसा उन्होंने मुझसे लिखने को कहा था।

"बिलकुल पर्चे की तरह ही लिखा है तुमने! मैं नहीं जानता कि तुमने क्या लिखा है, फिर भी मैं पढ़ने का प्रयत्न करूंगा। मैं एक के बाद एक प्रत्येक शब्द का पहला अक्षर लूंगा।"

मुझे आश्चर्य है कि शीघ्र ही उन्होंने पढ़ लिया—मेरी प्यारी छोटी ग्रॉबेन, मैं तुम से प्यार करता हूं।

"यह क्या है, यह क्या है?" प्रोफेसर बोले।

वास्तव में प्रेमजन्य मूर्खतावश ही अनजाने ही

यह वाक्य लिखा गया था।

"अच्छा, तुम ग्रॉबिन को प्यार करते हो," प्रोफ़ेसर कठोर स्वर में बोले।

"जी... हां... नहीं... मेरा मतलब है...," मैंने कहा। "अच्छी बात है, पर्चे के साथ ही इस बात पर भी विचार किया जायगा।"

मेरे चाचा जी का ध्यान सिर्फ़ रहस्यमयी भाषा की ओर ही था, मेरे भेद को खोल देने वाले शब्दों को वे बिलकुल ही भूल चुके थे।

प्रोफ़ेसर लिडेनब्रॉक ने जैसे ही उस पर्चे को कांपती हुई उंगलियों से पकड़ा, उनकी आंखें चमक उठीं। वे बेहद उत्तेजित थे। आखिरकार मेरे दुर्भाग्यपूर्ण वाक्य की तरह ही उन्होंने उन शब्दों को भी गंभीर स्वर में पढ़ा।

लेकिन मुझे आश्चर्य हुआ जब कि उन्होंने मेज़ को ज़ोर से धक्का दिया और गरजते हुए चीखे "ऐसा नहीं है। इसके तो कोई मानी ही नहीं हैं।"

दूसरे ही क्षण वे उठे और अपनी पूरी शक्ति से भागते हुए सड़क पर निकल गए।

"वे चले गए!' शोर सुनकर देखने के लिए दौड़ते हुए मार्था ने चिल्लाकर कहा।

"हां," मैंने उत्तर दिया "वे गए।"

"बिना खाना खाए ही? कुछ भी नहीं खाया, शाम का खाना भी नहीं खाया?," मार्था ने कहा।

"हां, शाम का खाना भी नहीं खाया," मैं बोला।

"इसके क्या माने हैं?"

"मेरी प्यारी मार्था! न तो वे खाएंगे ही और न घर में किसी को खाने ही देंगे।"

"अरे! मैं तो बिना खाए मर जाऊंगी।"

बात तो ठीक ही थी, पर ऐसा कहने का साहस मुझे नहीं हुआ।

मार्था डर गई थी और दुःखी चेहरा बनाए हुए रसोई में फिर से लौट गई।

"अब मैं अकेला था, मेरे दिमाग में आया कि जाकर सारी बात ग्रॉबिन को बता दूं। लेकिन जा ही कैसे सकता था? प्रोफ़ेसर किसी भी क्षण लौट कर आ सकते थे। और मान लीजिए, उन्होंने मुझे पुकारा और उस रहस्यमयी भाषा पर फिर से कार्य शुरू करना चाहा। जो उन्होंने पुकारा और मैं न हुआ तब क्या होगा?

बुद्धिमानी रुक जाने में ही थी। और मुझे एक भूगर्भशास्त्री के लिए बहुत काम करना था, जिसने कि हमें फ्रांस के बहुत से पत्थरों को नाम ज्ञात करने के लिए भेजा था। मैंने उन पर काम करना शुरू कर दिया—उनकी परीक्षा करके क्रम से सजाने का काम।

लेकिन मेरा काम मुझे पुराने पर्चे के विषय में सोचने से रोक नहीं पाया। मैं दुःखी और परेशान हो उठा। मेरे विचार से कोई भयानक घटना होने वाली थी।

एक घंटे के काम के बाद सारे पत्थर अपने उचित स्थानों पर थे और मैं उस कुर्सी पर बैठकर चाचा जी के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। वे कहां हो सकते थे? मुझे लगा कि वे आहतोना की सड़कों पर, वृक्षों के नीचे फूलों को छड़ी से तोड़ते हुए और चिड़ियों को भयभीत करते हुए, लंबे कदम रखते हुए घूम रहे होंगे। क्या वे टहलते हुए ही रहस्य जान लेंगे और अपनी सफलता पर मुस्कराते हुए लौटेंगे? या उसे पाने की आशा छोड़कर निराशा और गुस्से से भरे हुए लौटेंगे?

स्वयं से ही यह प्रश्न पूछते हुए वह काग़ज़ मैंने उठा लिया और मन में सोचा "आख़िर इसका क्या मतलब हो सकता है?" हर तरह से शब्द तरतीबवार रखने का बड़ी देर तक प्रयास करता रहा। पर कुछ भी मतलब नहीं निकाल पाया। काग़ज़ इतना रहस्यमय था कि किसी को भी पागल बना देने के लिए काफ़ी था। मैंने एक बार फिर से प्रयत्न किया। उस काग़ज़ को मैं इतनी देर तक देखता रहा कि उसके शब्द मुझे अपने शरीर के चारों ओर चक्कर खाते से मालूम देने लगे। मुझे गर्मी लगने लगी थी, अतः काग़ज़ को पंखे की तरह हिला डुलाकर हवा करने लगा। काग़ज़ का सामनेवाला, और पिछला भाग बारी-बारी से मेरी दृष्टि के सामने आ और जा रहा था।

एकाएक काग़ज़ के पीछे कुछ अच्छी लिपि में लैटिन शब्द लिखे देख मेरे मस्तिष्क में समस्या का हल आ गया। मैंने सब समझ लिया। मैंने उस रहस्यमय भाषा की कुंजी ढूंढ़ ली थी। काग़ज़ के पीछे वह सरलता से पढ़ी जा सकती थी। उनके एक क़दम अधिक बढ़ जाने से ही पूरा संदेश पढ़ा जा सकता था। और यह क़दम मैंने अचानक ही अनजाने में बढ़ा पाया था।



कल्पना की जा सकती है कि मैं कितना प्रसन्न हो रहा होऊंगा। ख़ुशी के मारे आंखों में आंसू आ जाने से मैं देख भी नहीं पा रहा था।

आख़िरकार मैंने अपने को संभाला। कमरे के दो चक्कर लगाए और फिर से कुर्सी पर जा बैठा।

"अब मैं इसे पढ़ूंगा," लंबी सांस लेकर मैं बोला।

अपनी उंगली एक के बाद एक प्रत्येक अक्षर पर रखकर मैंने पूरा संदेश पढ़ लिया। लेकिन मैं डर से कांप उठा। निश्चेष्ट होकर बैठ गया। क्या वास्तव में कोई ऐसा कर सकता है जो मैंने अभी पढ़ा था? क्या सचमुच कोई ऐसा कर सकता है?

"नहीं नहीं, मैं चाचाजी को यह नहीं जानने दूंगा।" मैं कुर्सी से उछलते हुए चिल्लाया।

"यदि वे इसे जान गए तो वे उस यात्रा में अवश्य ही जाएंगे। उन्हें कोई भी रोक न सकेगा। अपने साथ वे मुझे भी ले जाएंगे और हम कभी भी न लौट पाएंगे।"

मैं कितना डरा हुआ और दुःखी था, यह बताना मेरी सामर्थ्य से बाहर है।

"नहीं नहीं।" मैं चिल्लाया "मैं चाचा जी को जाने से रोकूंगा। मैं इस काग़ज़ ही को जला दूंगा। चूल्हे में थोड़ी सी आग अब भी शेष थी। मैं इस पर्चे को आग में डालकर उस ख़तरनाक भेद को समाप्त करने जा ही रहा था कि उसी समय कमरे का दरवाज़ा खुला और चाचा जी अंदर आ गए।

मेरे पास इतना ही समय बचा था कि मैं काग़ज़ों को फिर से मेज़ पर रख देता। प्रोफेसर लिडेनब्रॉक मेरा वहां होना जान न सके। वे बराबर उस रहस्य के बारे में ही सोचे जा रहे थे।

अब वे बैठ गए थे और कलम लेकर शब्दों को नई रीति से सजा रहे थे। मेरी आंखें उनके हाथों को देख रही थीं। मैं उनकी सारी गतिविधि देख रहा था। मेरा सारा डर दूर हो गया, जब वे किसी भी प्रकार शब्दों को न ठीक कर सके। उनके सारे प्रयत्न बेकार हो गए।

(अगले अंक में जारी)

जूलेवर्न के उपन्यास '*ए जर्नी इन टू दी सेंटर ऑफ अर्थ*' का अनुवाद। अनुवादक : प्रभात किशोर मिश्र। सौजन्य : इंडियन प्रेस, इलाहाबाद। सभी चित्र : शोभा घारे।



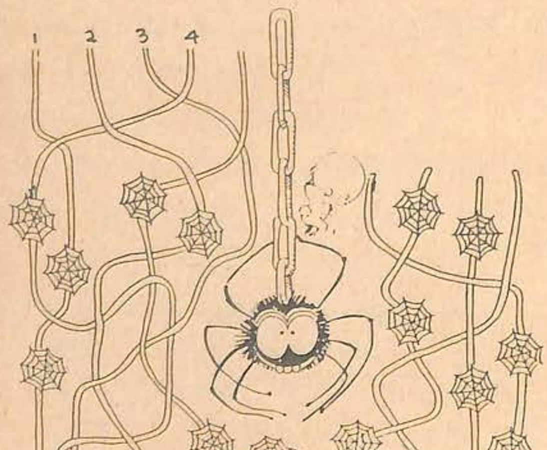
माथापच्ची

(1)



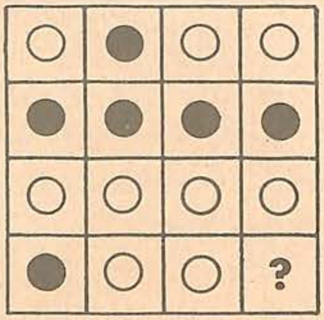
इन दो आकृतियों में पिता और बच्चे का संबंध है। अगर छोटी आकृति बेटा नहीं है तो क्या है?

(2)



यह मकड़ी उस रास्ते से जाना चाहती है जिसमें सबसे ज़्यादा जाले मिलें! कौन-सा रास्ता होगा?

(3)



खाली जगह में कैसा गोला आएगा?

(4)

दस दोस्तों ने स्कूल की, पढ़ाई से पिंड छूटने की खुशी में किसी होटल में जाकर खाना खाने का निश्चय किया। जब सब होटल में पहुंचे तो, उनमें बहस शुरू हो गई कि टेबिल के चारों ओर कौन कहां बैठे। एक ने सुझाव दिया, कि नामों के वर्ण क्रम में बैठना चाहिए। दूसरा बोला, उम्र के अनुसार बैठो। तीसरे ने सलाह दी क़द के हिसाब से क्यों न बैठें। बहस गर्म हुई जा रही थी और टेबिल पर रखा खाना ठंडा। होटल का मालिक भी चिकचिक से उकता गया लगता था। तभी होटल के एक बैरे ने यह कहकर सबको शांत किया, 'भैया बहुत बहस हो गई, अब बंद करो। आज किसी भी तरह, किसी भी क्रम में बैठ जाओ।''

सब बैठ गए।

बैरा आगे बोला, 'आप में से कोई लिख ले कि आज आप किस क्रम में बैठे हैं। आप कल भी यहां खाना खाने आइए और किसी दूसरे क्रम में बैठिए। परसों फिर तीसरे क्रम में। जिस दिन आप पुनः आज के क्रम में बैठेंगे, मैं उस दिन से हर रोज़ आपको मुफ़्त खाना खिलाऊंगा।

सबने सोचा, यह तो अच्छी बात है। हर दिन आकर विभिन्न क्रमों में बैठा जाए, ताकि जल्दी ही वह दिन आ जाए जब खाने के पैसे न चुकाने पड़े।

तुम बता सकते हो उन्हें कितने दिन प्रतीक्षा करनी पड़ी होगी?

(5)

ताश की गड्डी में से 20 पत्ते चुनो—हुकुम के इक्के से 10 तक व पान के इक्के से 10 तक। अब अपने किसी दोस्त से कहो कि इस नई गड्डी से हुकुम का एक पत्ता निकाले व पान का एक। हां, यह याद रखो कि इक्के को 1 अंक दिया जाएगा।

अब दोस्त से कहो कि उसने जो हुकुम का पत्ता निकाला है उसे 6 से गुणा करो। गुणनफल प्राप्त होने पर पान के पत्ते का अंक उसमें जोड़ दे। जो योग मिला उसे दुगना करे। अब प्राप्त संख्या में से हुकुम के पत्ते का अंक घटाए। फिर शेष संख्या में से हुकुम के पत्ते का अंक घटाए। फिर शेष संख्या में से पान के पत्ते का अंक घटाए। अब जो संख्या बचे वह उससे पूछ लो। इस संख्या से तुम यह पता लगा सकते हो कि तुम्हारे दोस्त ने शुरू में कौन-कौन से पत्ते चुने थे। सोचो तो भला, दोस्त द्वारा बताई संख्या से यह जानकारी कैसे प्राप्त हो सकती है?

पहेलियां

जिसकी दहाड़ से जंगल कांपे
हिरनों पर जो मारे छापे
बंदर टपक पड़ें पेड़ों से
तेज़ चाल से धरती नापे
जिससे हर कोई डर जाता
क्या नाम तुम्हें उसका आता?

●

जिसके पेट में थैली होती
जिसमें वह बच्चे रख लेता
लंबी कूद लगाता है वह
भारत में ना पैदा होता

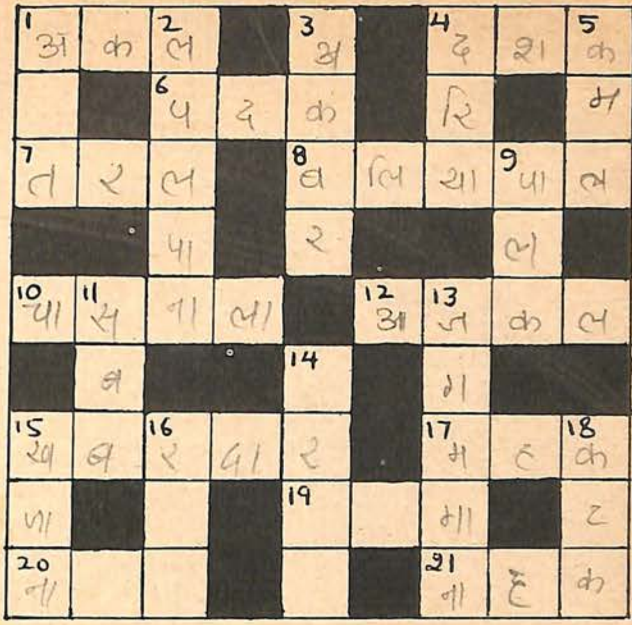
□ रमेश दवे

वर्ग पहेली-25 : हल

बाएं से दाएं : 4. अपंग 6. बरखुरदार 7. गायक 9. सतना 11. अनुदार 12. विकराल 13. ललक 15. चरक 18. सकारात्मक 19. कायल।

ऊपर से नीचे : 1. सबला 2. या खुदा 3. सदारत 5. पंचायतीराज 8. अनुकरणीय 9. सरल 10. नाविक 14. ललकार 16. खत्म 17. नौकर।

वर्ग पहेली - 26



संकेत : बाएं से दाएं

1. बुद्धि जो नकल के लिए ज़रूरी है (3)
4. अवसाद शक में बीते दस साल (3)
6. निरापद कर्म में तमगा (3)
7. उल्टी आदत में आधे रस का द्रव (3)
8. उड़ीसा का एक स्थान मिसाइल रेंज से जुड़ा (5)
10. पचास नालायकों में खदान दुर्घटना का एक उदाहरण (4)
12. वर्तमान में परसों शामिल नहीं (4)
15. समाचार सहित सावधान (5)
17. सरे आम हकलाने में सुगंध (3)
19. सिपाही के लिए आधी रोटी के आसपास धोखा (3)
20. प्राचीन काल के विख्यात संदेशवाहक (3)
21. फालतू उल्टा कहना (3)

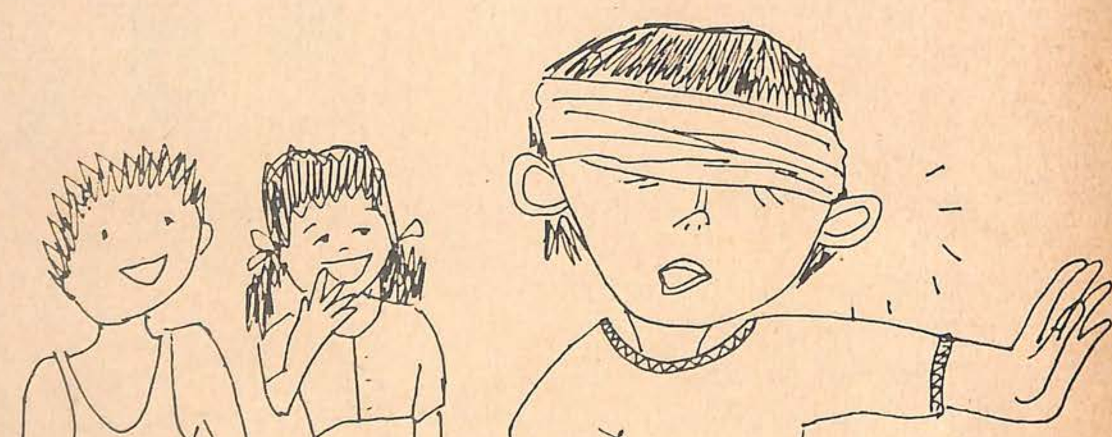
संकेत : ऊपर से नीचे

1. चरण का अजेय बेटा (3)
2. नया पल पालना या लालच में जीभ निकालना (5)
3. अब कर उल्टा-सीधा एक राजा (4)
4. उल्टी याद में सरिता का धड़, समंदर (3)
5. कीचड़ का फूल (3)
9. माता-पिता की सब्ज़ी (3)
11. इन सब बहियों में ढूंढो वजह (3)
13. गम ना गाज कैसे चमकना! (5)
14. शीश की पीड़ा (कई लोग इसे पालते भी हैं) (4)
15. उनकी साख जाना उसके अंदर कोष (3) 16 down ?
18. एक टकसाल में उड़ीसा का शहर (3)

नन्हे ?

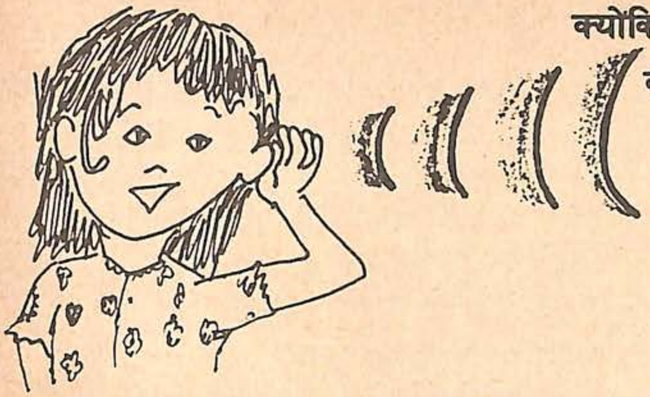
हमारे दो कान क्यों होते हैं?

जिससे हम अंदाज़ लगा सकें कि आवाज़ किस ओर से आ रही है। चूंकि हमारे सिर के दोनों ओर कान होते हैं इसलिए आवाज़ की दिशा पता लगाने के लिए हमें सिर नहीं घुमाना पड़ता।



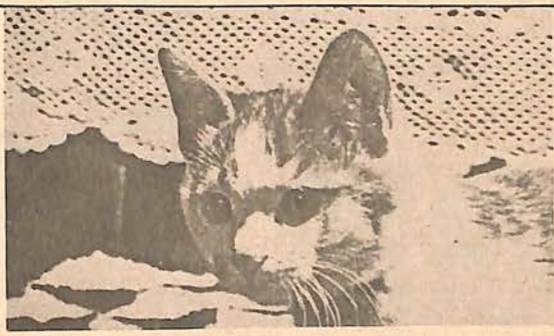
☐ चित्र, शब्द एवं सज्जा : स्मिता अग्रवाल, जयपुर
(टाईम लाईफ एनसाईक्लोपीडिया पर आधारित)

कानों की आकृति ऐसी क्यों होती है?



क्योंकि सीप या शंख की आकृति के कान आवाज़ को बहुत अच्छी तरह पकड़ सकते हैं। अपने कान के पीछे हाथ लगा कर कोई आवाज़ सुनो। ज़्यादा साफ सुनाई पड़ती है ना?

बिल्ली के कान चारों ओर घूम सकते हैं, इससे बिल्ली और भी अच्छी तरह आवाज़ों को सुन सकती है।



आगे की आवाज़ सुनते हुए



पीछे की आवाज़ सुनते हुए



माता-पिता और शिक्षक के लिए

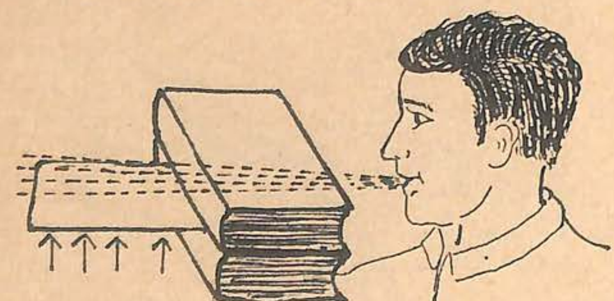
हमारे कान के तीन भाग होते हैं - बाहरी, बीच का और अंदरूनी। जिसे हम कान कहते हैं वह असल में हमारे कान का केवल बाहरी भाग है । यह आवाज़ को पकड़ता है और बीच के भाग तक जाता है । यहां हमारे कान का पर्दा कंपन कर के आवाज़ को अंदरूनी भाग तक भेजता है । फिर आवाज़ मस्तिष्क के उस भाग को जाती है जो सुनने की क्रिया का केंद्र है । यहां आ कर ही आवाज़ का हमारे लिए कुछ अर्थ बनता है ।

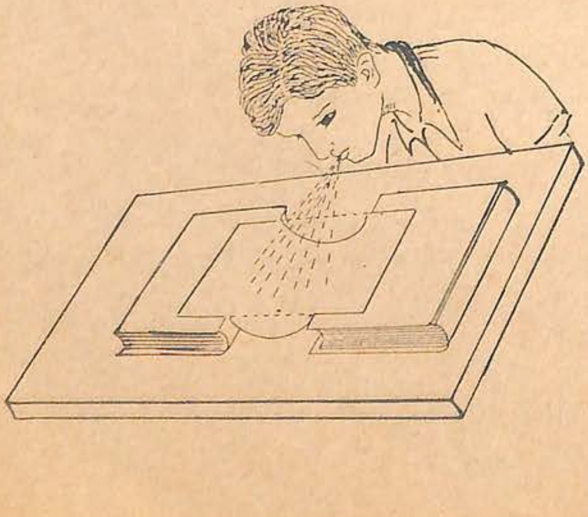
काग़ज़ के साथ कुछ प्रयोग

काग़ज़ पर लिखने का काम तो सभी करते हैं। पर काग़ज़ के साथ कुछ प्रयोग करें।

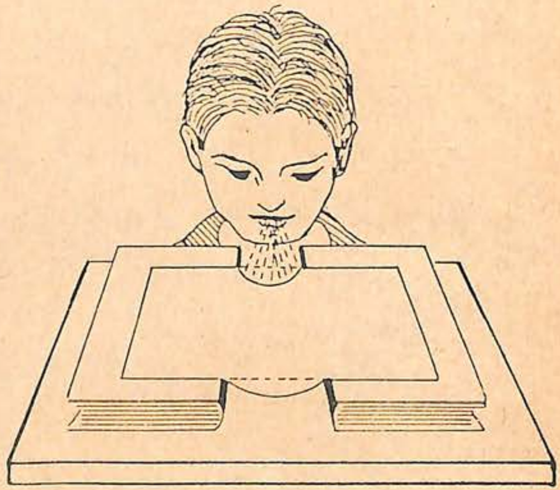
एक काग़ज़ (कापी का पन्ना भी चलेगा) लो। काग़ज़ को दो किताबों के बीच इस तरह दबाओ कि उसका ज़्यादातर हिस्सा लटकता रहे। अब नीचे वाली किताब को पकड़कर, ऊपर वाली किताब के ऊपर से काग़ज़ पर ज़ोर से फूंक मारो।

देखो तो भला क्या होता है? काग़ज़ किस दिशा में जाएगा? ऊपर... या नीचे! काग़ज़ ऊपर की ओर जाएगा। क्या तुम सोच सकते हो, ऐसा क्यों हो रहा है? दरअसल जब हम काग़ज़ पर फूंकते हैं तो वहां हवा की गति तेज़ हो जाती है और दबाव कम। परंतु काग़ज़ पर नीचे की हवा वायुमंडलीय दबाव डालती है। यह दबाव ऊपर के दबाव से अधिक होने के कारण, काग़ज़ ऊपर की ओर उठने लगता है।





ऐसा ही एक और प्रयोग करते हैं। दो किताबों को मेज़ या किसी ऊंची सीधी सतह पर रखो। दोनों के बीच करीब 4-5 अंगुल की जगह हो।अब काग़ज़ के पन्ने को इनके ऊपर बिछा दो। अब काग़ज़ पर बीचों-बीच फूंक मारो। काग़ज़ नीचे की ओर झुक जाता है। अब झुककर, काग़ज़ के नीचे किताबों के बीच से फूंक मारो। क्या अब भी काग़ज़ नीचे की ओर मुड़ गया?



हवा के बहाव के इसी सिद्धांत पर काग़ज़ से एक और प्रयोग करो। इसके लिए काग़ज़ के दो बड़े पन्नों की ज़रूरत होगी। चित्र में दिखाए गए तरीके से काग़ज़ों को दोनों हाथों से क़रीब तीन-चार अंगुल की दूरी पर पकड़ो। अब इनके बीच फूंक मारो। देखो क्या हुआ!



('क्वेस्ट' कार्यक्रम से साभार)

भैया का दोस्त

भैया का वह दोस्त अजीब ही था। यों भैया के अनेक दोस्त थे जिनका मुझे नाम ही नहीं बल्कि सूरत, गुण और स्वभाव सब कुछ मालूम था। किंतु यह नया दोस्त हम सबकी समझ से बाहर था। ऊंचा पूरा कद, बड़े-बड़े घने बाल, स्याह काला रंग, लंबे कान, पल-पल झपकती-सी निरीह आंखें और झबरीली पूंछ... पर वह भैया का दोस्त था, प्यारा दोस्त। जिसके बिना उन्हें खाने में भी मज़ा न आता। मैं उसे ढोंगी कहती।

"हां, हां ढोंगी नहीं तो क्या? भैया को देख दुम हिलाने लगता... पीछे ऐसी अकड़ दिखाता जैसे शेर हो। और भैया की आहट हो या रोटी की गंध... बकरी बन जाता है पेटू... ढोंगी।"

"अरे जा तेरी रोटियों को सूंघता भी नहीं मेरा 'बीसा'... वह तो प्रेम का भूखा है। जहां उसका आव आदर न हो हलवा पूरी बरसे उसे क्या...!"

"पर रोटी नहीं खाता क्या हमारे घर? कि तुम कहीं ओर से लाते हो?"

"बड़ी आई 'घर' वाली! तेरा ही घर है ना जो धौंस जमाती है...," भैया सचमुच चिढ़ जाते और मैं हंसती हुई भाग जाती।

भैया उसे बेहद चाहते। उतना ही जितनी मुझे उससे नफरत थी। उनकी दोस्ती का प्रारम्भ कब हुआ



यह तो कहना कठिन है किंतु मेरा ध्यान तब गया, जब लगातार मैंने रोटियों का डिब्बा खाली देखा। और भैया को भी कुछ बगल में दबाकर नज़रें चुराते, घर से बाहर जाते देखा। एक दिन उनको रंगे हाथ पकड़ लिया। काग़ज़ में लिपटी चार बासी रोटियां थीं। अक्सर रात को बची रोटियां कजरी को खिला दी जातीं। मैंने रास्ता रोककर पूछा, "कहो, यह सब किसके लिए हैं?"

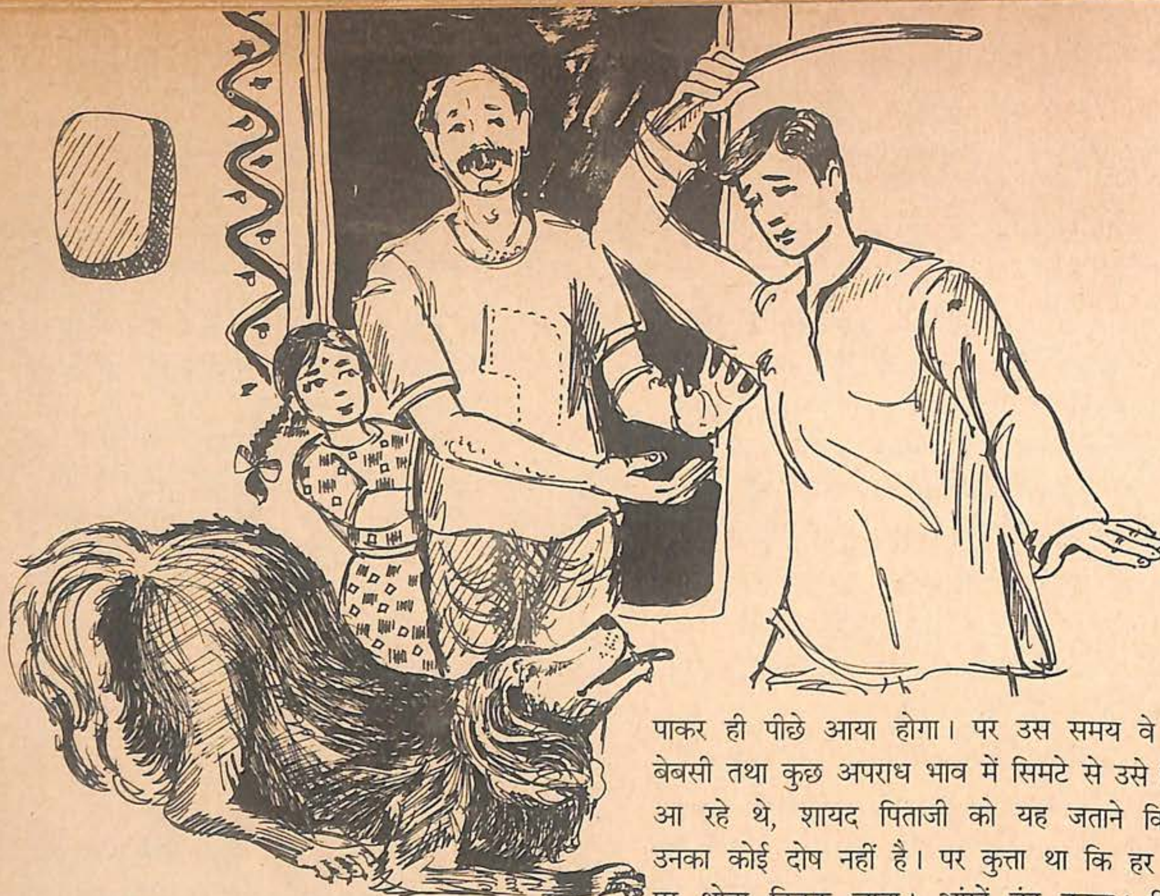
भैया बड़े थे। इस नाते डराने धमकाने का जन्मसिद्ध अधिकार पाया था उन्होंने। लगे आंखें दिखाने, "क्यों तुम्हें मतलब?" पर इससे आगे कुछ कहते कि पिताजी आ गए। सो बड़े मुलायम स्वर में बोले, "बीनू, वो... वो... चिड़िया नहीं... मछलियां हैं ना? बड़े चाव से खाती हैं इनको। बड़ा मज़ा आता है। तुम देखोगी? आहा... सीप-सी चमकती हैं...!"

पिताजी तो अनसुनी-सी करते चले गए। पर उनकी हड़बड़ाहट से मुझे संदेह हुआ। गहराई से देखते हुए वकीलाना अंदाज़ में तर्क किया, "सो तो ठीक है बड़े भैया, पर रोटियां? मछलियों के लिए?? मुझे तो नहीं लगता...!"

"तो तुझे जो लगता है वह सही... चल हट... बड़ी आई पूछने वाली। तू कोई मजिस्ट्रेट है या जज है हमारी?" और एक ओर धकेलते चले गए।

मैं भी पीछे न थी। विश्वस्त सूत्रों से पता चला कि जनाब इतनी सारी रोटियां एक कुत्ते को खिलाते हैं। मुझे भैया की शिकायत करने का अच्छा मौका मिला। बात यह थी कि हमें कुत्ते से बहुत नफरत होती थी। कभी कोई कुत्ता सीढ़ियों पर भी चढ़ता तो अम्मां उन्हें धो डालतीं। कुत्ता हमें मात्र गंदगी व बीमारी की जड़ लगता। हां कुत्ते के पिल्ले ज़रूर अच्छे लगते। किंतु फिर भी दूर से। और भैया थे कि कुत्ते से आत्मीय रिश्ता जोड़ रहे थे। फिर एक और बात मन में थी कि कुत्ते को कितना ही लाड़ प्यार से पालो-पोसो, पर अंत उसका अक्सर कष्टदायक रहता है। शायद इसीलिए किसी के बुरे से बुरे अनिष्ट की कामना के लिए 'कुत्ते की मौत मरने' का शाप दिया जाता है।

हालांकि आधुनिक समय में कुत्ता पालना फैशन-सा है। पर वह एक अलग बात है। वहां कुत्ते का रहन-सहन भी घर के सदस्यों जैसा होता है। खूब पैसा



खर्च होता है, प्रशिक्षण दिया जाता है। सफ़ाई का विशेष ध्यान। इन देशी कुत्तों के लिए तो बड़ा घर हो, जहां वे पड़े रहें। पर हमारे यहां न तो आधुनिक सुविधाएं थीं न बड़ा घर था। कुत्ते के लिए कहां गुंजाइश थी। कोई और जानवर होता तब भी कोई बात थी। पर कुत्ते के लिए हमारे न घर में, न ही दिल में कोई जगह थी। इसीलिए जब पिताजी ने सुना तो आपे से बाहर हो गए, "नालायक हमारी गाय के हिस्से कुत्ते को खिलाता है। ख़बरदार जो कुत्ते को मुंह लगाया... आइंदा घर से रोटी का टुकड़ा भी गया तो खै़र नहीं!"

भैया सिर झुकाए सुनते रहे। किसी के गुस्से को सहन करने में वे बड़े माहिर हैं। सिर तक नहीं उठाते। उनके इसी व्यवहार के कारण पिताजी की गर्मी फ़ौरन नरमी में बदल जाती है। वे बाहर चले गए। उस समय पता नहीं भैया का क्या भाव होगा। किंतु जो भी होगा विद्रोह का होगा क्योंकि उन्होंने सब सहकर भी क़दम पीछे न हटाकर आगे बढ़ा लिए थे।

मां इस विषय में उदार थीं। भैया को गुमसुम देखकर दो-चार रोटियां थमा ही देती थीं। पर बात यहीं तक न थी। उसे आगे बढ़ना था सो बढ़ी। हुआ यह कि एक दिन बीसा भैया के पीछे चला आया। हालांकि दावे के साथ कह सकती हूं कि वह भैया का सिगनल पाकर ही पीछे आया होगा। पर उस समय वे झेंप व बेबसी तथा कुछ अपराध भाव में सिमटे से उसे झिड़कते आ रहे थे, शायद पिताजी को यह जताने कि इसमें उनका कोई दोष नहीं है। पर कुत्ता था कि हर झिड़की पर थोड़ा ठिठक जाता। आंखें बंद करता। फिर दबे पांव पीछे आ जाता। और इसी प्रयास में चौंतरे पर आकर पूंछ को टांगों में दबाता हुआ, डरने का अभिनय करता बैठ ही गया। गजब का ढीठ था। भैया ने स्वयं को निर्दोष साबित करने व बीसा के लिए पिताजी की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए ज़ोर की ठोकर मारी," चल... उठ यहां से... चल।"

वह कूं... कूं... करता याचना करने लगा। फिर वे एक पतली-सी संटी उठा लाए। उसे देखते ही वह पसर गया... गिड़गिड़ाने लगा। मानो कह रहा हो... 'यह क्या बात है जो मारते हो दोस्त... ऐसे तो कभी नहीं थे...' साथ ही यह भी कि, 'मारो या रखो मैं यहां से नहीं जाऊंगा...।'

भैया का यह तरीका कारगर रहा उसका करुण क्रंदन सुनकर पिताजी चिल्ला पड़े, "अरे दिलीप क्यों मारता है उसे? उसका क्या दोष। जब तुमने उसका हौसला बढ़ाया है तो मारते क्यों हो? बैठा रहेगा बेचारा। और क्या दो-चार रोटियां ही तो खाएगा!"

अंधा क्या चाहे दो आंखें... भैया फ़ौरन ही तो उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। ऐसी आत्मीयता? मैं कुढ़ने लगी। यह दुष्ट न होता तो मेरे भैया सिर्फ़ मुझे प्यार करते। मेरा ही ध्यान रखते। उसके प्रति नफ़रत के साथ ईर्ष्या भी गहराती गई। और क्यों नहीं?

धुले-पुछे फ़र्श पर कीचड़ सने पैरों से ऐसे आकर बैठ जाता जैसे हमसे पहले यह घर इसी का हो। बैठा-बैठा आंखें मूंदे हांफता रहता और बालिश्त भर जीभ निकाले लार गिराता रहता। तब मेरा खाना तो छूट ही जाता, पर उस जगह से ही घृणा होती। बाद में मां जगह धो डालती। पर मेरी आंखों से वह तस्वीर न जाती। उफ़... कितना गंदा...! धूल भरे रुखे बाल कीचड़ सने पैर व पूंछ। घृणामय जीभ और ढीठता भरी आंखें। पूरे कलेवर में कहीं भी मुझे वह सुंदरता या कोमलता न दिखी जिस पर प्यार आए। भैया ने क्या देखा कि फ़िदा हो गए बना लिया जिगरी दोस्त!

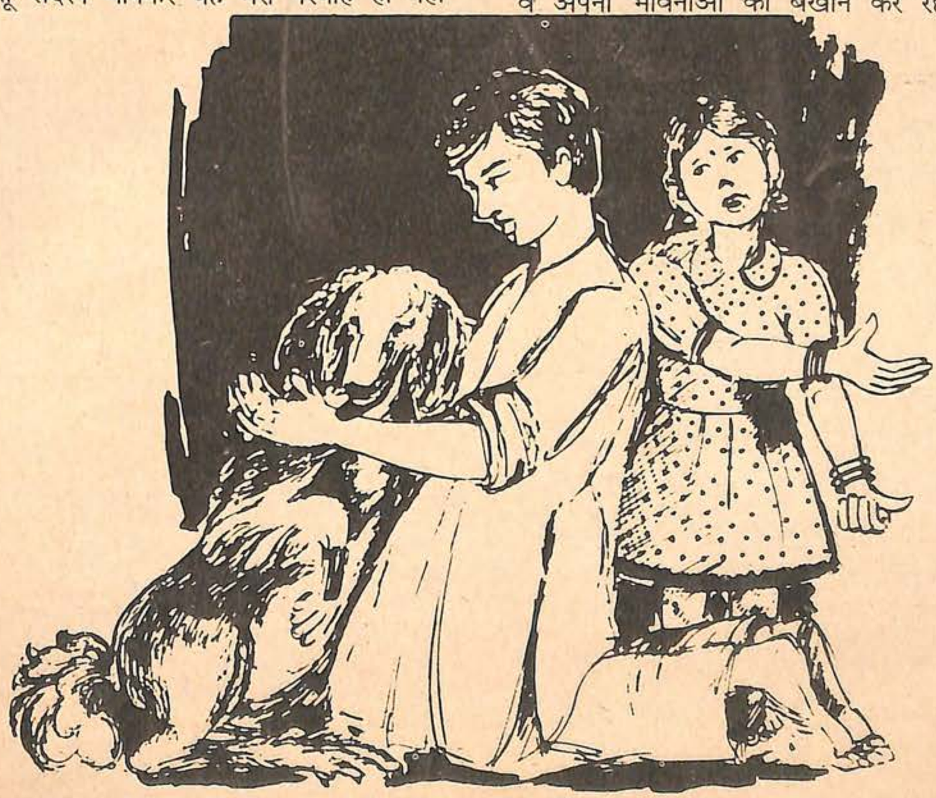
गर्मियों की भरी दोपहरी में दरी बिछाकर हम ताश या कैरम से मन बहलाते रहते, तभी कहीं से हांफता हुआ आता और भैया से सटकर बैठ जाता। भैया मेरी जलती निगाहों पर मुस्कराते हुए उसकी गर्दन में हाथ डालकर उसे और सटा लेते और दुलारते। तब रुआंसी होकर सिवा उठने के मेरे पास कोई चारा न रहता। जी करता कि अकेले में दो-चार हाथ कस कर जमा दूं। पर मेरे हाथ में डंडा देखकर ही कम्बख़्त ऐसे चिल्लाता कि भैया या मां को दौड़कर आना पड़ता। और मुझे उनके आने से पहले ही डंडा फेंक देना पड़ता।

वह मेरी नफ़रत को खूब समझता था और मुझे घर का फालतू सदस्य मानकर वह मेरी परवाह ही नहीं करता। भैया तो उसके लिए सब कुछ थे। पर मां या पिताजी भी उसे पुकारते तो पीठ के बल लेटकर, पूंछ हिलाकर, पंजे बढ़ाकर कृतज्ञता व्यक्त करता। किंतु मुझे देखकर ऐसी उपेक्षा दिखाता कि खुद हैरान हो जाती। कभी परखने के तौर पर मैं उसके लिए रोटी डालती तो मुंह फेर लेता। बल्कि उठकर दूसरी जगह जा बैठता। मैं शिकायत करती, "देखो भैया, तुम्हारा बीसा रोटी नहीं खाता मेरे हाथ से।"

"तू उसे प्यार से थोड़े ही खिलाती है? देख...", और वे पुचकारकर कहते, "आ बीसा... रोटी क्यों नहीं खाता? चल खा...!"

ताज्जुब कि वह रोटी खाने लगता। तब भैया फूलकर कहते, "मानती हो, रहीम ने झूठ नहीं कहा, 'अमिय पिया वह मान बिन...' मेरा बीसा इंसान से अधिक समझदार है।"

एक दिन सुबह मां रात का अनुभव सुना रहीं थीं। बीसा रात के ग्यारह बजे आकर आंगन में अड़ गया। लाख भगाने के बाद भी वह टस से मस न हुआ। चारों पैर ऊपरकर पेट को दिखाने लगा। उन्होंने चार मोटी रोटियां बनाईं। उन्हें खाकर बीसा बिना कहे ही उठ गया आज्ञाकारी बालक की तरह। बड़ी आत्मीयता से मां उसकी फ़रियाद, अपनी रुखाई, फिर उसकी ज़िद व अपनी भावनाओं का बखान कर रहीं थी ।



मेरी ईर्ष्याग्नि में तो घी पड़ गया, "ठीक है मां! हमसे तो वह कुत्ता ही भला। यदि मैं भूखी होती तो मेरे लिए नहीं बनाती इतनी रात गए रोटी। कहती सो जाओ बिटिया... देर रात की रोटी हज़म नहीं होती... वाह रे जानवर मां का प्यार भी तू हमसे जीत ले गया...।"

मां चोट खाई-सी बोलीं, "बीनू यह बात नहीं! पर मैं तुम्हारी मां हूं, इसकी मां कहां है? जो...!"

"हो तो सही तुम इसकी मां। तुम्हें तो यह भैया की तरह ही तो प्यारा है?"

"नहीं बेटे यह बात नहीं। दरअसल यह बेचारा आस लगाए आता है। हमारे यहां दो रोटी खाकर द्वार पर ही पड़ा रहता है। उससे तो द्वार की शोभा ही बढ़ती है...!!"

"वाह! वाह क्या बात है मां! जैसे वह कुत्ता न होकर गुलदस्ता हो गया, वाह! घर की शोभा बढ़ती है।"

"अब तुझसे कौन मुंह लगाए? अरे कितना वफ़ादार है जिसकी खाता है, बजाता तो है। कहां तो घी-दूध के लाले पड़े रहते थे पर अब बिल्ली देखी है घर में? अरे बिल्ली ही नहीं आस पड़ोस के कुत्ते भी नहीं झांकते इधर। नहीं तो हुजूम लगा रहता था। नींद हराम कर देते थे रात में। पर अब अनजानी आहट को भांपते ही गुर्राने लगता है। डीलडौल देखकर ही भाग जाते हैं।"

मां की इन बातों में दम था। वास्तव में बिल्ली आए दिन घी दूध खाकर मुटियाती जा रही थी, पर अब हम निश्चिंत थे।

यों बीसा सफ़ाई का ध्यान रखता था। एक बार हमारे चबूतरे पर हड्डी का टुकड़ा पड़ा था। भैया खूब नाराज़ हुए। बीसा पहले खूब याचना करता रहा कि, 'वह इसे नहीं लाया।' पर भैया न माने तो उठाकर फेंक आया । बाद में पता चला कि वह काम किसी दूसरे कुत्ते का था। मेरे मन में उसके लिए प्रशंसा का भाव पैदा हुआ पर ज़्यादा न टिका। यों मेरा भी मन चाहता कि जिस तरह वह भैया को देख पंजे बढ़ाता है, पूंछ हिलाता है, मेरे लिए भी करे। पर यह मैंने छुपाए रखा। व्यर्थ ही भैया के सामने 'नीची' नहीं करवानी थी। इसीलिए बीसा भी मुझसे कटा ही रहा।

एक बार किसी ने उसके पैर में कुल्हाड़ी मार दी। गहरा घाव हुआ। हड्डी दिखने लगी। बरसात के दिन थे। वैसे भी चारों ओर कीचड़ रहती है ऊपर से यह गंदगी। आखिर वही हुआ न जिसका डर था, हमने सोचा कुत्ते का घाव? वह भी बरसात में? यह ज़रूर सड़ेगा और हमें तंग करेगा। जब वह लंगड़ाता, छटपटाता हमारे घर की ओर आता हम किवाड़ लगा लेते। कभी नहीं लगा पाते तो वह भीतर आ जाता और छटपटाता इधर-उधर फिरता। भगाने से भी नहीं भागता। तब हमारा जी ख़राब हो जाता और भैया को बुरा-भला कहते, "इसी ने आफत पाली है, भुगतेंगे हम सब... यहीं सड़ेगा... मरेगा...!"

भैया सबकी बातें चुपचाप सुनते। वह किसी को जवाब न देते। वे अपने दोस्त की पीड़ा से पीड़ित थे और अपनी व्यथा बांटना भी नहीं चाहते थे। जब कुत्ता तड़फता हुआ आता और सब दुत्कारते, भैया दुखी मन से उसे देखते व उसकी सारी पीड़ा को खुद महसूसते। कहते तो केवल इतना, "यदि इस तरह तुम्हें कुछ हो जाए तो?"

फिर भैया कहीं से दवा ले आए और दोस्त की सहायता से उसे लगाते। वह तड़फता, छूटने की कोशिश करता, फिर भैया की डांट खाकर चुप हो जाता। हम घृणा मिश्रित संवेदना से देखते तो रहते पर भैया की सहायता न करते। भैया अकेले ही उसके घाव से लड़ते रहे। और एक दिन बड़ी ख़ुशी से बताया कि बीसा का पैर ठीक हो गया है। अब भैया हमसे कुछ कट गए। उनके दोस्त की तकलीफ में हम भागीदार जो नहीं हुए थे। अब वो थे और उनका दोस्त बीसा। मुझसे तो कम बात करते। उन्हें सारी दुनिया स्वार्थी लगने लगी जो दुख में किसी का साथ नहीं देती।

इस घटना के करीब छह माह बाद एक दिन भैया को बहुत उदास, गुमसुम देखा। पेट दर्द का बहाना बनाकर लेटे रहे। खाना नहीं खाया। कभी एकांत कमरे में दिखें या छत पर अकेले। मुझसे उनकी यह बेरुखी व उदासी सही न गई।

आहिस्ता से पीछे जाकर पूछा, "भैया क्या बात है? कोई परेशानी है?" उन्होंने कोई जवाब न दिया। मैंने निकटता बढ़ाने की गरज से पूछा, "भैया कल से बीसा नहीं आया...," उन्होंने मेरी ओर देखा होंठ कुछ हिले फिर मुंह फेर लिया। मैंने फिर पूछा, "भैया बोलते क्यों नहीं... बीसा...।"

"तुम्हें क्या लेना-देना बीसा से? नहीं आ रहा



सभी चित्र : विवेक

तो तुम्हारे लिए तो खुशी की बात है, खूब हंसो, तालियां बजाओ...!" अचानक वे पलट कर बोले।

पहली बार यह रूप देखा अपने भैया का। उनकी लाल आंखें देखकर मैं सकते में आ गई। वे मुझे बेहद प्यार करते थे। अपनी हर बात को मुझे दोस्तों की तरह सुनाते। हर समय बीनू... यह बात... बीनू वह बात की रट लगाते। पढ़ाई ख़त्म करके घर बैठे। पर कभी नहीं लगा कि वे पढ़े-लिखे घर बैठे नौजवान हैं। छोटे बच्चों की तरह खाना, पहनना, रहना। मैं उनसे दस वर्ष छोटी थी, पर उनकी हर बात की राज़दार थी। हर खुशी व हर ग़म की। कोई बात पिताजी से सीधे नहीं कह सकते थे। मेरे द्वारा ही कहलवाते।

वही मेरे भैया उस दिन इतने दुखी व क्रोधित थे। पर उस दिन उन्होंने मुझसे अपनी कोई बात न कही।

दो दिन बाद मीनू ने बताया कि बीसा इस दुनिया को छोड़ गया। सुनकर मेरा दिमाग़ चकरा गया। विश्वास ही नहीं हुआ। क्यों? कब? कैसे? यह सब हुआ?

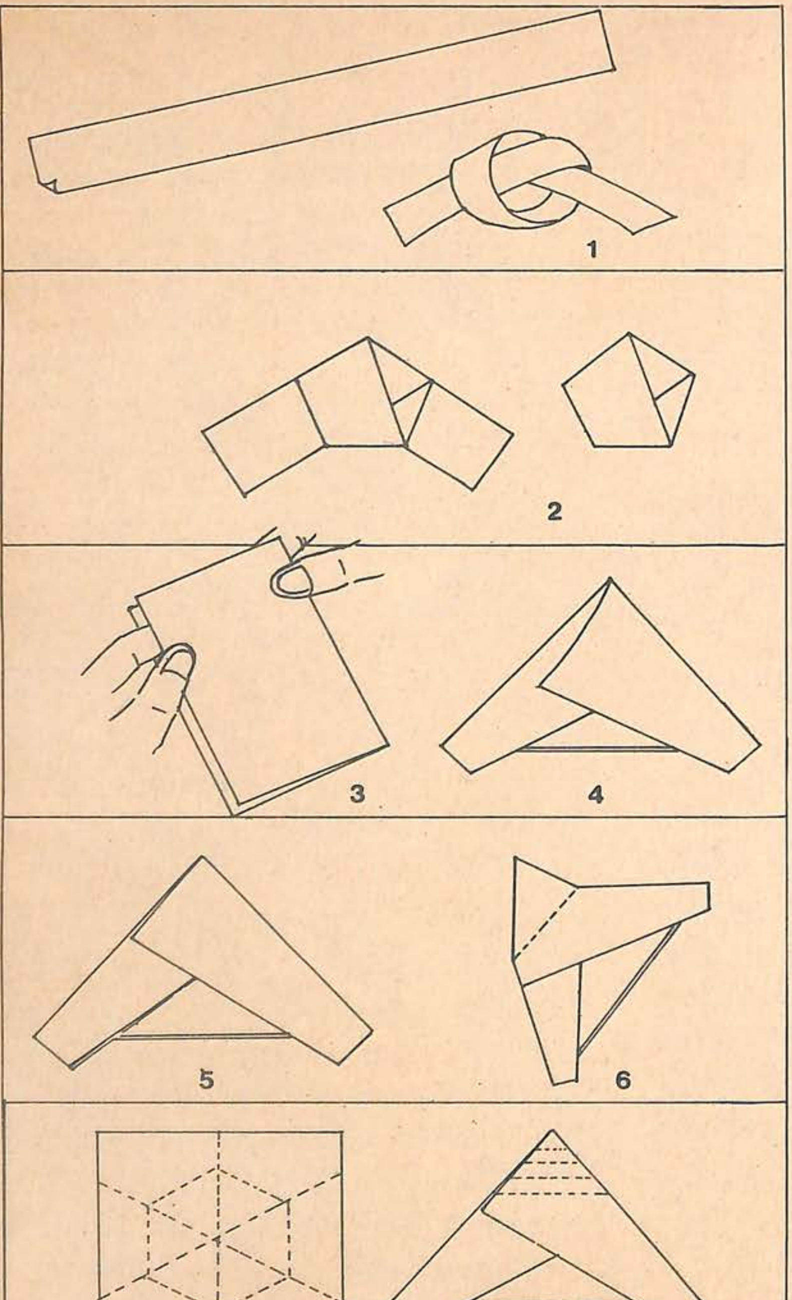
जब बीसा उन दिन घर नहीं आया, तब शाम को भैया व एक दोस्त उसे ढूंढने गए। गांव से करीब एक किलोमीटर दूर आम के पेड़ के सहारे टिका बैठा था बीसा। उन्होंने आवाज़ लगाई। जो बीसा उनकी आहट पर ही दौड़ पड़ता, वह आवाज़ से क्यों न उठा। आशंकित हो वो पास पहुंचे तो ज्ञात हुआ कि बीसा अब कभी न उठेगा!

भैया जाने कितनी देर चुपचाप आंसू बहाते रहे। फिर दोस्त के साथ मिलकर समाधि दी। सुनकर मेरा अंतरतल हिल गया।

बीसा मरा भी तो कहां जाकर। क्या वह हमारे विश्वास को झुठलाने के लिए कि वह मरते वक्त हमें तंग करेगा? अकेला, निरीह, एकांत में जाकर दुनिया से उठ गया सुनकर मेरी आंखें छलछला उठीं। अपने मानव होने के अहं व सफ़ाई के आडम्बर ने मुझे उससे कितना अलग कर दिया। काश मैं उसे समझ पाती। भैया के प्रति मैं नत हो गई, जिन्होंने संवेदना से उसे समझा-माना। बीसा ने इतनी दूर प्राण त्यागकर मानो हमारे मुंह पर तमाचा मार दिया। एक वह जो प्रेम रहित स्वादिष्ट खाद्यों को सूंघता भी नहीं था और एक हम मानव हैं जो स्वार्थों के लिए अन्याय के हाथों भी बिकने में नहीं झिझकते। वह हमसे निश्चित ही श्रेष्ठ था। काश मैं भी भैया की तरह उससे रिश्ता जोड़ पाती।

मेरे मन में कभी न भरने वाली रिक्तता समा गई। कुत्तों के प्रति जो घृणा का भाव था वह तो पछतावे में ही घुल गया।

□ गिरिजा कुलश्रेष्ठ
माध्यमिक विद्यालय, तिलौंजरी, मुरैना



गांठ से पंचभुज और षट्भुज जाल

किसी काग़ज़ की पट्टी को 2, 4, 8, 16, 32... भागों में मोड़ना आसान काम है। प्रत्येक मोड़, पट्टी को दुगने हिस्सों में बांट देता है। पर क्या इतनी ही आसानी से पट्टी को पांच बराबर हिस्सों में मोड़ा जा सकता है! काग़ज़ को मोड़कर पंचभुज बनाना एक टेढ़ी खीर है।

आओ पंचभुज बना के देखें। हम लोग अक्सर रस्सी में गांठ बांधते हैं। गांठ पंचभुज की आकृति लेती है, पर हम इस पंचभुज को अक्सर अनदेखा कर देते हैं। एक लंबी आयताकार काग़ज़ की पट्टी लो और उसके दोनों छोरों को लेकर एक गांठ मार दो (चित्र-1)। गांठ के दोनों छोरों को हल्के-हल्के खींचो (चित्र-2)। देखो तो भला गांठ पंचभुज की आकृति में आ गई न!

अब एक षट्भुज मोड़ो। पहले पन्ने को दोहरा मोड़ लो (चित्र-3)। अब दोहरी किनार को 60° के तीन बराबर कोणों में मोड़ो (चित्र-4)। ध्यान रखो कि दोहरी किनार के सिरे मोड़ों पर एकदम जमकर बैठें **(चित्र-5)।** अब छह परतों वाले कोने को एक त्रिकोण में मोड़ो (चित्र-6)। पन्ने को खोलने पर उसके बीचों बीच एक सुंदर षट्भुज दिखेगा (चित्र-7)। छह परतों वाले कोने में कई समानांतर मोड़ (चित्र-8) डालने से पन्ने को खोलने पर मकड़ी के जालनुमा नमूना दिखाई देगा (चित्र-9)।

□ **अरविंद गुप्ता**

वैकल्पिक ऊर्जा

हमारी रोज़ की ज़िंदगी में हमारी, रोज़ की दिनचर्या में हमें ऊर्जा की आवश्यकता होती है। खाना पकाने के लिए, यातायात के लिए, संचार के लिए, खेती के कामों के लिए, औद्योगिक उत्पादन के लिए। इस तरह हर तरह का काम करने के लिए हमें ऊर्जा की आवश्यकता होती है। उन्नीसवीं सदी की शुरूआत तक हमारी ऊर्जा की आवश्यकताएं काफ़ी सीमित थीं। परंतु औद्योगिक क्रांति के साथ-साथ आदमी की भौतिक आवश्यकताएं बढ़ती गईं, जिससे ऊर्जा की मांग अत्यधिक बढ़ने लगी। ऊर्जा की इस अत्यधिक बढ़ती हुई मांग को काफ़ी हद तक पूरा किया कोयला और खनिज तेल ने। विज्ञान व टेक्नोलॉजी के विकास के साथ-साथ जनसंख्या में हुई विस्फोटक वृद्धि के कारण आज खाने के लिए अनाज व ऊर्जा की मांग को पूरा करना कष्टप्रद सिद्ध हो रहा है।

इस मांग में वृद्धि के कारण हमारी ऊर्जा आवश्यकताएं अगले 20-25 वर्षों में दोगुनी बढ़ जाएंगी। इसका अर्थ यह हुआ कि अगले 20-25 वर्षों में कोयले व पेट्रोलियम की खपत मानव इतिहास में आज तक हुई खपत से भी अधिक बढ़ जाएगी। खनिज व प्राकृतिक गैस के भंडार, यदि और नए भंडारों की खोज न हो सकी तो, अधिक से अधिक अगले 30-35 वर्ष तक ही चल पाएंगे। कोयले के भंडार अधिक से अधिक सौ वर्ष तक ही चलेंगे। फिर उसके बाद क्या होगा? ऊर्जा संकट आ खड़ा है। समय आ गया है इस संकट से लड़ने का। इसका उपाय है। कल आने वाले ऊर्जा संकट से बचने के लिए, आज के ऊर्जा स्रोतों का बचतपूर्वक उपयोग करना होगा। यह कैसे होगा? कैसे हम आज के ऊर्जा भंडारों का विवेकपूर्ण उपयोग कर उन्हें अधिक से अधिक समय तक चला सकते हैं? हम यह कर सकते हैं ऊर्जा के पुनः उपयोगी व नवीनकरणीय स्रोतों का दोहन करके।

ऊर्जा के ये पुनः उपयोगी व नवीकरणीय स्रोत प्रकृति में चारों ओर बिखरे पड़े हैं। ये स्रोत हैं सौर ऊर्जा, वायु ऊर्जा, बहते पानी से प्राप्त होने वाली ऊर्जा, पशुओं के गोबर से प्राप्त होने वाला गोबर गैस (बायोगैस), समुद्र की लहरों से प्राप्त होने वाली ऊर्जा, भू तापीय ऊर्जा आदि। ऊर्जा के ये स्रोत पुनः उपयोगी व नवीकरणीय कहलाते हैं। इन्हें पुनः उपयोगी व नवीकरणीय इसलिए कहा जाता है क्योंकि हमें इनका प्रदाय पुनः पुनः प्राप्त होता रहता है। ऊर्जा के खनिज स्रोत जैसे कोयला, खनिज, तेल व प्राकृतिक गैस, इनके भंडार सीमित हैं, व ये एक न एक दिन-समाप्त हो जाएंगे। जबकि प्रकृति प्रदत्त सौर ऊर्जा, वायु ऊर्जा, बहते पानी से प्राप्त होने वाली ऊर्जा, समुद्र की लहरों से प्राप्त होने वाली ऊर्जा, भू-तापीय ऊर्जा असीमित है, अनंत है।

सौर ऊर्जा का सोलर कुकर द्वारा उपयोग कर खाना पकाया जा सकता है। फोटोवोल्टेईक सेल का प्रयोग कर सौर ऊर्जा से सड़कों पर रात में रोशनी के लिए सड़क बत्तियां जलाई जा सकती हैं, पानी खींचने का पंप चलाया जा सकता है, टी.वी. चलाया जा सकता है, डिस्टिल वॉटर प्राप्त हो सकता है, बिजली प्राप्त की जा सकती है, पानी गरम किया जा सकता है।

वायु ऊर्जा या पवन ऊर्जा से पवन चक्कियां चलाकर कुएं से, तालाब से सिंचाई के लिए पानी निकाला जा सकता है। जहां पर हवा की गति अच्छी हो उन क्षेत्रों में एयरोजनरेटर लगाकर बिजली पैदा की जा सकती है।

हमारे देश में पशुओं की संख्या काफ़ी है। पशुओं के गोबर और मानवमल से बायोगैस उत्पन्न कर हम एक ऐसी ऊर्जा उत्पन्न कर सकते हैं जो न केवल हमारे खाना पकाने के काम आ सकती है बल्कि उससे हम पीने का पानी पंप कर सकते हैं और रोशनी की व्यवस्था भी कर सकते हैं। किसी नाले या छोटी नदी के बहते पानी को बांध कर उस बंधे पानी की ऊर्जा से हाईड्रेम पंप चलता है। इस हाईड्रेम पंप से काफी ऊंचाई तक पानी पंप किया जा सकता है।

लकड़ी के छोटे टुकड़ों अथवा कृषि उपज से उत्पन्न मोटे कचरे से गैसी फायर के माध्यम से प्रोड्यूसर गैस बनाई जाती है जो कि कार्बन मोनो ऑक्साइड, हाइड्रोजन, मीथेन का मिश्रण होता है। यह गैस उपयुक्त ईंधन होता है जिससे डीजल इंजिन चलाने पर केवल 20 प्रतिशत डीजल खर्च होता है व 80 प्रतिशत प्रोड्यूसर गैस का उपयोग होता है, अर्थात् डीजल की 80 प्रतिशत बचत होती है।

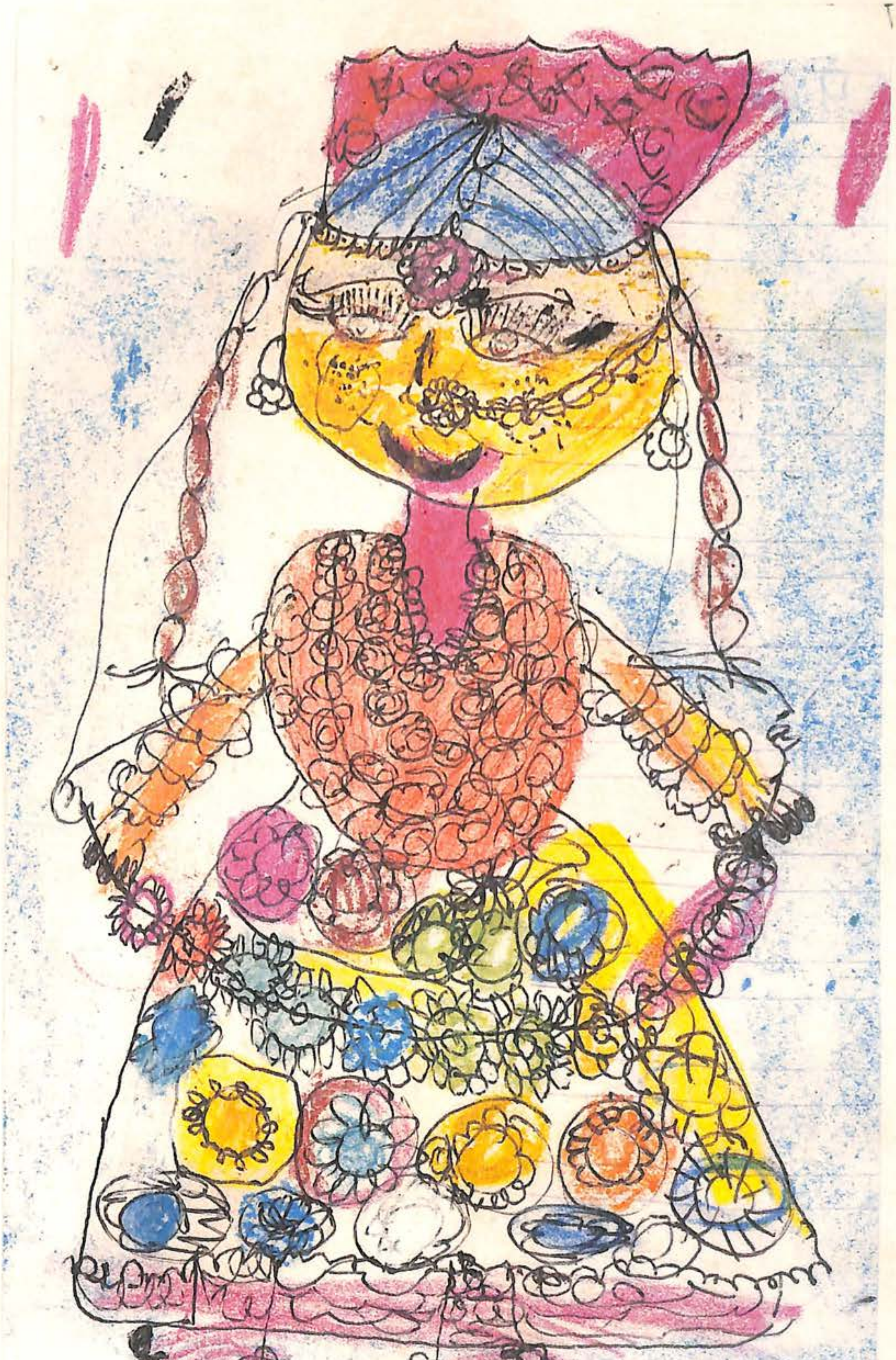
कुछ अन्य देशों में भू-तापीय ऊर्जा का उपयोग बिजली पैदा करने के लिए किया जा रहा है व सागर की लहरों से भी ऊर्जा प्राप्त की जा रही है। आज के ऊर्जा संकट के लिए हम स्वयं ज़िम्मेदार हैं और हमारे आने वाले बेहतर कल के लिए हमें ही उसका उपाय खोजना होगा। ज़रूरत है इस दिशा में उचित क़दम उठाने की, एक योग्य दृष्टिकोण की, ऊर्जा के सीमित स्रोतों का बुद्धिमत्तापूर्वक व विवेकपूर्ण उपयोग करने की। ज़रूरत है ऊर्जा के वैकल्पिक व नवीकरणीय स्रोतों का विकास करने की।

फैसले महिलाओं के हक़ में

- ☐ म.प्र. में कमज़ोर तबकों को पट्टे पर रियायती कीमत पर या निःशुल्क दी जाने वाली ज़मीन में से 40 प्रतिशत केवल महिलाओं को। बाक़ी 60 प्रतिशत ज़मीन का आवंटन भी पति-पत्नि के संयुक्त नाम से हो। आरक्षित भूमि आवंटन में विधवाओं, परित्यक्ताओं और निराश्रित महिलाओं को प्राथमिकता।
- ☐ देश भर में सबसे पहले महिलाओं के लिए एक्शन प्लान—मध्यप्रदेश में।
- ☐ महिला-बच्चों से संबंधित कार्यक्रमों को पूरी मुस्तैदी से लागू करने के लिए अलग संचालनालय और अब नया विभाग भी।
- ☐ गर्भवती, शिशुवती, माताओं और बच्चों के पोषक आहार, सेहत, शिक्षा और मार्गदर्शन के लिए 130 समेकित बाल विकास परियोजनाएं।
- ☐ महिलाओं के आर्थिक विकास के लिए रायपुर, गुना, शहडोल, छिंदवाड़ा, राजगढ़, भिंड, सरगुजा, शाजापुर, सीहोर और टीकमगढ़ में विशेष परियोजनाएं।
- ☐ महिला एवं बाल विकास संचालनालय में महिलाओं के लिए विशेष सूचना कक्ष। पीड़ित महिलाओं के लिए महिला संरक्षण कक्ष की स्थापना।

महिलाओं के हक़ में कारगर क़दम — मध्यप्रदेश सरकार

ज.सं.सं. 732/डी/89



निपुण पौराणिक, सात वर्ष, इंदौर

पंजीयन क्रमांक 1317/सी/85 के अंतर्गत भारत के समाचार-पत्रों के रजिस्टार द्वारा पंजीकृत।
डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/89



सचिन सक्सेना, छटवीं, देवास

रेक्स डी रोजारियो की ओर से विनोद रायना द्वारा भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई-1/208, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016 से प्रकाशित।
संपादक : विनोद रायना।